Con. 3. VII. 31. 49
350

अंक 7
संख्या 31

सोमवार,
3 जनवरी
सन् 1949 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

विधान का मसौदा-(जारी) 2069-2141
[अनुच्छेद 66 तथा 67 पर विचार]

भारतीय विधान-परिषद्

सोमवार, 3 जनवरी, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-परिषद कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में प्रातः दस बजे, माननीय उपाध्यक्ष (डॉ. एच. सी. मुकर्जी) के सभापतित्व में समवेत् हुई।

विधान का मसौदा-(जारी)

अनुच्छेद 66

***उपाध्यक्ष** (डॉ. एच.सी. मुकर्जी): सभा का कार्य आरम्भ करने से पूर्व मैं सदस्यों से कहूंगा—और मुझे इसका पक्का विश्वास है कि सभी सदस्य इससे सहमत होंगे—कि सब लोग एक मिनट खामोश खड़े होकर परमपिता परमात्मा के प्रति, जो सभी प्राणियों एवं शक्तियों का मूल आधार है और जिसकी उपासना हम सभी अपने-अपने तरीकों से करते हैं, उसके लिये अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करें कि अन्ततोगत्वा काश्मीर में युद्ध-विराम का समझौता हो गया।

(सभा एक मिनट तक नीरव खड़ी रही)

आप सबको धन्यवाद है।

आज का काम हम प्रारम्भ करेंगे अनुच्छेद 66 को लेकर। इसके पास हो जाने पर हम अनुच्छेद 67 को उठायेंगे।

सभा के समक्ष प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 66 को विधान का अंग समझा जाये।"

इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में संशोधन नं. 1353 मि. नजीरुद्दीन अहमद के नाम से आया है। इसे उपस्थित करने की अनुमति नहीं दी जाती है क्योंकि इसमें सार की बात नहीं है।

संशोधन नं. 1354 और 1355 दोनों का एक ही आशय है। 1355 को उपस्थित करने की अनुमति दी जाती है। यह श्री ब्रजेश्वरप्रसाद के नाम में है।

(संशोधन नं. 1354 और 1355 पेश नहीं किये गये।)

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[उपाध्यक्ष]

नं. 1358 अब उपस्थित किया जा सकता है। यह श्री लोकनाथ मिश्र और श्री मोहनलाल गौतम के नाम से है।

***श्री लोकनाथ मिश्र** (उड़ीसा : जनरल): मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्, कि:

"अनुच्छेद 66 से 'and two Houses to be known respectively as the Council of States' शब्द निकाल दिये जायें।

मेरा संशोधन स्वीकृत होने पर अनुच्छेद का रूप यह होगा:—

"There shall be a Parliament for the Union which shall consist of the President and House of the People.' "

(संघ के लिये एक संसद् होगी जो प्रधान और लोक-सभा की बनेगी।)

इसका नतीजा यह होगा कि संसद् का, राज्य-परिषद् नामक दूसरा आगार नहीं होगा।

मेरा निवेदन है, श्रीमान्, कि सिद्धान्तत: मैं दूसरे आगार के विरुद्ध हूं। किन्तु आज देशवासियों की जो मनोदशा है तथा विधान में, दूसरे आगार की रचना के लिये जो व्यवस्था रखी गई है इनको देखते हुए मैं तो नहीं समझता कि दूसरे आगार की कोई आवश्यकता है और न मैं यही समझता हूं कि दूसरा आगार हमारे लिये कुछ उपयोगी होगा। जहां तक मैंने विधान का तथा वैधानिक नजीरों का अध्ययन किया है, मैं तो यही समझता हूं कि आजकल प्राय: सभी यह स्वीकार करते हैं कि द्वितीय आगार की अब कोई जरूरत नहीं रह गई है। दूसरे आगार के रखने के पक्ष में एकमात्र दलील जो आजकल आमतौर पर पेश की जाती है वह यह है कि लोक-सभा के फैसलों पर इसका हितकर प्रभाव पड़ेगा क्योंकि लोक-सभा में अधिकतर आम जनता के प्रतिनिधि आते हैं और आजकल जनता बड़ी अधीर है। इसलिये मेरा निवेदन यह है कि जब तक कि दूसरे आगार की रचना प्रणाली में परिवर्तन नहीं किया जाता है और हम एक ऐसी व्यवस्था को नहीं अपनाते हैं जो शुद्धत: भारतीय हो, भारत की गहन एवं सर्वांगीण-दृष्टि मूलक संस्कृति पर आधृत हो, जो भारतीय भावना एवं प्रवृत्ति पर आधृत हो, जो प्रशांति-कर प्रभाव पैदा करने वाली हमारी परम्पराओं के आधार पर निर्मित हो, तब तक खाली एक दूसरा आगार बना देने से ही उसका लोक सभा पर कोई

प्रभाव न पड़ेगा। पर ऐसा तो होने वाला नहीं है इसलिये मैं नहीं समझता कि दूसरे आगार की कोई वास्तविक आवश्यकता हमें है। इसके निर्माण का एकमात्र परिणाम यह होगा कि सरकारी धन का अपव्यय होगा और समय की बर्बादी होगी। इसलिये मेरा मत यह है कि संविधान में द्वितीय आगार की जो रचना पद्धति रखी गई है उसमें अगर परिवर्तन नहीं किया जाता है तो अच्छा यह होगा कि द्वितीय आगार की व्यवस्था ही न की जाये। मुझे प्रसन्नता है कि अपने उड़ीसा प्रान्त में हम लोगों ने द्वितीय आगार न रखने का निश्चय किया है और वहां केवल एक ही आगार हम रखेंगे। मेरा यह मत नहीं है कि दूसरे आगार के अभाव में, आज जो हमारी स्थिति है, उसमें, हमारा देश किसी तरह से अकिंचन हो जायेगा।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 1356 तथा 1359 एक ही आशय के हैं। बेगम ऐजाज रसूल अपना संशोधन नं. 1356 पेश कर सकती हैं।

***बेगम ऐजाज रसूल** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): मेरा प्रस्ताव यह है, श्रीमान् कि:

> "अनुच्छेद 66 में 'There shall be a Parliament for the Union which' शब्दों की जगह 'The Legislature of the Union shall be called the Indian National Congress and' शब्द रखे जायें।"

उस सूरत में अनुच्छेद का रूप यह होगा:

> "The Legislature of the Union shall be called the Indian National Congress and shall consist of a President and two Houses to be known respectively as the Council of States and the House of the People."
>
> (संघ के विधान-मण्डल का नाम होगा इण्डियन नैशनल कांग्रेस और उसमें राष्ट्रपति तथा दो आगार होंगे जिनके नाम क्रमश: राज्य-परिषद् और लोक-सभा होंगे।)

यह संशोधन रखने में मेरा उद्देश्य यह है कि 'पार्लामेण्ट' शब्द के बदले एक ऐसा नाम रखा जाये जो हमारे देश को और दुनिया को उस संगठन के नाम का संकेत दे सके जिसने देश के स्वातन्त्र्य-संग्राम का सूत्रपात तथा संचालन किया है। यदि 'पार्लामेण्ट' शब्द की जगह 'इण्डियन नैशनल कांग्रेस' शब्द रखे जाते

[बेगम ऐजाज रसूल]

हैं तो इससे यह होगा कि कांग्रेस के स्वातन्त्र्य-संग्राम को हम सदा के लिये देश की स्मृति में प्रतिष्ठित कर देंगे। इससे यह भी होगा कि कांग्रेस को हम गिरने से बचा लेंगे क्योंकि प्राय: यही होता है कि प्रत्येक राजनैतिक दल कालान्तर में चल कर जरूर गिर जाया करते हैं। इससे यह भी होगा कि भारतीय जन समाज कांग्रेस के जादू से मुक्त हो जायेगा और वह सोच समझ कर अपने मताधिकार का प्रयोग करेगा क्योंकि अन्यथा, कांग्रेस का नाम उनकी भावनाओं पर अनुचित प्रभाव डालेगा। ऐसा करना हमारे लिये इस कारण से और भी आवश्यक है कि कांग्रेस अतीत में, विशेषत: एक आन्दोलन के रूप में थी न कि एक दल के रूप में। स्वातंत्र्य के लिये राष्ट्र के हृदय में जो एक तीव्र लालसा थी, कांग्रेस उसका प्रतीक थी और त्याग तथा कष्ट की ओर जनता को सदा आकृष्ट किया करती थी। किन्तु कांग्रेस आज केवल एक दल के रूप में बदल गई है जिससे हो सकता है कि राजनैतिक मनचलों और सफल चोर-बाजारुओं के लिये यह एक सुन्दर आखेट-स्थल बन जाये।

कांग्रेस शब्द कोई नया नहीं है। अमेरिका के पार्लामेण्ट को कांग्रेस ही कहा जाता है और अगर भारत के विधान-मण्डल के लिये भी इसी शब्द को प्रयोग किया जाता है तो निश्चय ही इससे विश्व का ख्याल उन आदर्शों तथा सिद्धान्तों की ओर जायेगा जिन्हें कांग्रेस मानती है। इसलिये मैं समझती हूं कि हमारे लिये उपयुक्त यही है कि हम संविधान में 'पार्लामेण्ट' शब्द के लिये 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' शब्दों को रखें। आशा है मेरे इस सुझाव पर सभा समुचित ध्यान देगी और सहानुभूतिपूर्वक विचार करेगी। इन शब्दों के साथ मैं यह संशोधन उपस्थित करती हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब छठे सप्ताह की सूची 1 में संशोधन नं 1 है जो श्री आर. के. सिधवा के नाम से है। अभी-अभी जो संशोधन यहां पेश किया गया था, उसमें संशोधन लाने के अभिप्राय से यह संशोधन रखा जा रहा है। श्री सिधवा इसे पेश कर सकते हैं। सिधवा साहब सभा भवन में उपस्थित नहीं दिखाई देते हैं। अच्छा, तब प्रो. शाह अपने संशोधन नं. 1397 को पेश कर सकते हैं।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार: जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 66 से 'the President and' शब्द हटा दिये जायें।"

संशोधित अनुच्छेद का स्वरूप यह होगा:

"There shall be a Parliament for the Union which shall consist of two Houses to be known respectively as the Council of States and the House of the People."

(संघ के लिये एक संसद् होगी जिसमें दो आगार होंगे जिनके नाम क्रमश: राज्य-परिषद् तथा लोक-सभा होंगे।)

इस संशोधन को उपस्थित करते हुए मैं सभा के ध्यान में यह बात लाना चाहता हूं कि इस खण्ड का जो वर्तमान स्वरूप है, वह मेरी राय में, ब्रिटिश-पद्धति की नकल है और अनावश्यक नकल है। ब्रिटेन में सम्राट् वहां की समूची शासन-व्यवस्था, समस्त संविधान और खास करके वहां की पार्लामेण्ट का आवश्यक अंग समझा जाता है। वहां जो भी कानून बनाये जाते हैं उनके सम्बन्ध में यही कहा जाता है कि "वे परम महिमा-मण्डित सम्राट् द्वारा, दोनों आगारों के परामर्श एवं सहमति से बनाये गये हैं" (made by the King's Most Excellent Majesty, with the advice and consent of the two Houses)। वहां सम्राट् के नाम से न्याय किया जाता है; डाक विभाग सम्राट् के नाम पर काम करता है; वहां की सारी सेना, नौ बल एवं प्रतिरक्षा बल, तथा वहां की सभी असैनिक सेवायें सम्राट् के अधीन समझी जाती हैं।

किन्तु यह एक ऐसी व्यवस्था है जो अपने देश के संविधान के लिये उपयुक्त नहीं हो सकती है और न हमें अपने संविधान में इसकी नकल ही करनी चाहिये। सपरिषद्-सम्राट् (the King in Parliament) की जो पद्धति वहां बरती जाती है वह न केवल परम्परा पर ही आधृत है बल्कि इसका एक ठोस सा वैधानिक आधार है जिस पर यह स्थिर है। उदाहरण के लिये परमाधिकार सम्बन्धी शक्तियों (Prerogative powers) को ही लीजिये जिनका प्रयोग सम्राट् ही करता है। इसमें शक नहीं कि इन अधिकारों का प्रयोग वह अपने मन्त्रियों की सलाह से ही करता है फिर भी ये अधिकार केवल सम्राट् को ही प्राप्त हैं।

किन्तु भारत के राष्ट्रपति को यदि हम इंग्लैण्ड के राजा का यहां स्थानीय बनाते हैं और इस दिशा में इंग्लिश संविधान का अनुकरण करते हैं तो यह करना गलत होगा। भारतीय संघ के राष्ट्रपति को यहां के विधान-मण्डल का अंग बनाना ठीक नहीं होगा।

परमाधिकार की शक्तियां जो कि ब्रिटेन के नरेश को प्राप्त हैं, वह हमारे राष्ट्रपति को प्राप्त होंगी ही नहीं। हमारे ख्याल से अपने संविधान में मूलभूत

[प्रो. के.टी. शाह]

विचार तो यह है, अगर मैं बिल्कुल गलत नहीं समझ बैठा हूं, कि राष्ट्रपति केवल प्रतीक मात्र रहेगा जो प्रत्येक मामले में और प्रत्येक अवस्था में अपने मन्त्रियों की राय से ही काम करेगा। उसका अपना अधिकार कुछ नहीं होगा और वह केवल शोभा के लिये राज्य के राष्ट्रपति के रूप में रहेगा।

अगर अपने संविधान में राष्ट्रपति को यही स्थिति प्राप्त है जैसा कि मैंने अभी बताया है, और मैं तो नहीं देखता कि संविधान में ऐसी कोई बात है जो इस मत का खण्डन करती हो, तो मेरा यही कहना है कि इस अनुच्छेद 66 में राष्ट्रपति को लाना और उसे अपनी संसद का आवश्यक अंग बनाना सर्वथा असंगत है और हमें ऐसा नहीं करना चाहिए।

हमारा यह संविधान इंग्लैण्ड के संविधान की तरह शनैः शनै कालक्रम से पीढ़ी दर पीढ़ी शताब्दियों में नहीं विकसित हुआ है। ब्रिटिश संविधान का निर्माण हुआ है वहां के राजाओं के अधिकारों के द्वारा। वहां राजा शनैः शनै अपने अधिकार प्रजा को देता गया, अपने परमाधिकार को एक-एक कर छोड़ता गया या इस बात पर राजी होता गया कि वह अपने अधिकारों का प्रयोग केवल मन्त्रियों के परामर्श से ही करे। इस रूप में वहां संविधान विकसित हो पाया है। किन्तु हमारी पार्लामेण्ट यानी भारतीय संसद् तो यहां की जनता के नाम पर अपने अधिकार से कार्य करेगी और इसलिये हमारे राष्ट्रपति के लिये, यद्यपि वह जनता का मनोनीत प्रतिनिधि रहेगा, ऐसी व्यवस्था करना आवश्यक नहीं है और न ऐसा होना ही चाहिये, कि वह हमारी विधायिनी सभा का आवश्यक अंग समझा जाये।

मेरा ख्याल है कि अगर हम ब्रिटिश रूढ़ि की या वहां की सांविधानिक रस्मों की इस प्रकार आंख बन्द करके और इस सीमा तक नकल करेंगे तो इससे हम मुसीबत में ही पड़ेंगे। ब्रिटिश संविधान जिस सिद्धान्त पर बना है वह उस सिद्धान्त से सर्वथा भिन्न है जिस पर कि हमारा संविधान आधृत है। ब्रिटिश संविधान अधिकतर रूढ़ि और परम्परा के आधार पर निर्मित हुआ है। अधिकांश में ये रूढ़ियां अभी भी लिपिबद्ध नहीं हुई हैं और न इन्हें कोई प्रामाणिक रूप ही प्राप्त है। और परिस्थिति के अनुरूप उन्हें अपनाने की काफी गुंजाइश छोड़ी गई है। और जो कुछ वहां लिपिबद्ध हुआ है वह पार्लामेण्ट द्वारा बनाये गये कतिपय कानून ही हैं जो वहां की परम्परा रूढ़ि या प्रथाओं के आधार पर ही बनाये गये हैं। किन्तु हमारे साथ यह बात नहीं है। हम अपने संविधान को लिखित रूप में रखने जा रहे हैं और यह हमारा उस सम्बन्ध में प्रथम प्रयास है। इसलिये मेरा

यह निवेदन है कि हमारे लिये यह मौजूं नहीं होगा कि हम अपने राष्ट्रपति को अपनी संसद् में वही स्थिति दें जो कि ब्रिटेन नरेश को वहां की पार्लामेण्ट में प्राप्त है।

इसलिये मेरा यह सुझाव है कि इन शब्दों को निकाल देना चाहिये। मेरा यह एक पुराना सुझाव था। इसके लिये मैंने एक संशोधन भी रखा था कि शासन सम्बन्धी, एवं न्याय सम्बन्धी जो शक्तियां हैं, उनको पृथक्-पृथक् कर दिया जाये और उन्हें किसी एक अधिकारी या निकाय में न सन्निहित किया जाये। कहीं सभा यह न समझ बैठे कि यह संशोधन भी मैं अपने उसी पुराने विचार से प्रभवित होकर उपस्थित कर रहा हूं, मैं सभा को इस बात का यकीन दिलाता हूं कि अब मेरा वह विचार नहीं रह गया और प्रस्तुत संशोधन पर उस विचार का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। राष्ट्रपति को आप इस खण्ड से अलग कर सकते हैं और ऐसा करने से, संयुक्त शक्ति या सामूहिक दायित्व का जो सिद्धान्त है, जिस पर कि हमारा यह संविधान आधृत है, उसमें कोई आघात नहीं पहुंचेगा। अतः आशा है सभा को यह संशोधन ग्राह्य होगा।

(संशोधन नं. 1360, 1361, 1362, 1363 और 1364 पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्षः** अब इस अनुच्छेद पर विस्तृत रूप से विचार किया जा सकता है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): मुझे खेद है कि जो भी संशोधन उपस्थित किये गये हैं मैं उनके विरुद्ध हूं। इन संशोधनों का सम्बन्ध तीन बातों से है। पहला संशोधन जो और सबों में सर्वाधिक महत्त्व का है, वह इस आशय से रखा गया है कि प्रस्तुत अनुच्छेद को केवल लोक-सभा तक ही सीमित रखा जाये अर्थात् संशोधन पेश करने वाले साहब ऊपर वाला आगार नहीं रखना चाहते हैं। यह सभी जानते हैं कि आज हमारे देशवासियों में प्रबल उत्साह है और अन्य कारणों को तो जाने दीजिये, केवल इस उत्साह और बाहुल्य को देखते हुए यह जरूरी है कि हम विभिन्न लोगों को राजनीति में भाग लेने का मौका दें। इसलिये यह जरूरी है कि दूसरे आगार को भी हम रखें जहां लोगों की प्रतिभा को अबाध क्षेत्र मिल सके। दूसरे आगार के पक्ष में एक दूसरा कारण यह भी है कि अगर नीचे वाला आगार आवेश में कोई कानून तुरन्त पास कर देता है तो ऊपर वाले आगार तक उसके पहुंचने में जो समय का व्यवधान पड़ेगा उससे आवेश का प्रशमन हो जायेगा और कानून पर सही-सही विचार किया जा

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

सकेगा। उसके पक्ष में तीसरा कारण यह है कि ऊपर वाला आगार एक स्थायी निकाय होगा किन्तु लोक-सभा स्थायी नहीं होगी। ये कतिपय कारण हैं जिसको देखते हुये, हमारी वर्तमान स्थिति में यह आवश्यक है कि देश की समुन्नति के लिये हम दूसरा आगार रखें ही।

उसके नाम के सम्बन्ध में भी एक संशोधन आया है माननीया मित्र बेगम ऐजाज रसूल की ओर से। इसी आशय का एक संशोधन लारी साहब के नाम से भी आया है। दोनों ही संशोधनों में यह कहा गया है भारत की संसद् का नाम रहे "इण्डियन नेशनल कांग्रेस"। मैं उनके अभिप्राय की प्रशंसा करता हूं। निस्संदेह देश के स्वातन्त्र्य के लिये कांग्रेस ने ही संघर्ष किया है और इसी लिये इन मित्रों ने, जो कांग्रेस के प्रति सहानुभूति प्रकट कर रहे हैं, गो कि ये लोग कांग्रेस के साथ कभी नहीं थे, यह सुझाव रखा है कि भारतीय संघ की संसद् का नाम गौरवशाली कांग्रेस के नाम पर रखा जाये। यह संशोधन कितना भी स्तुत्य क्यों न हो, पर इसके स्वीकार कर लेने पर यह आरोप लगेगा कि इस देश की हुकूमत में केवल एक दल विशेष के ही लोग हैं। यही मित्र जिन्होंने संशोधन रखा है यह कहने लग जायेंगे:

> "देखिये न देश में क्या हो रहा है। कांग्रेस ने इस देश में केवल अपने ही दल की हुकूमत बना रखी है। यहां की संसद् का नाम भी उन्होंने कांग्रेस रख लिया है।"

यदि यह सुझाव स्वीकार कर लिया जाता है तो हो सकता है कि इससे कांग्रेस का खात्मा भी हो जाये। क्योंकि उस हालत में यह संगठन प्रतिक्रियावादी राजनीतिक दलों के विरुद्ध जो आज भी धर्म एवं सम्प्रदाय के आधार पर जोर पकड़ते जा रहे हैं, एक राजनीतिक दल के रूप में कोई मोर्चा न ले सकेगा। इसलिये यह संशोधन सर्वथा अमान्य है, श्रीमान।

अब मैं माननीय मित्र प्रो. के.टी. शाह के संशोधन पर आता हूं जिसमें कहा गया है कि राष्ट्रपति का इस अनुच्छेद में कोई जिक्र न होना चाहिये और देश के शासन से उसको किसी भी तरह सम्बद्ध नहीं करना चाहिये। इस सम्बन्ध में मैं अपने माननीय मित्र का ध्यान अनुच्छेद 42 की ओर आकृष्ट करूंगा जो यहां पास हो चुका है और जिसमें कहा गया है कि भारतीय संघ की अधिशासी शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी, और वह इसका प्रयोग संविधान तथा विधि के अनुसार कर सकेगा। हमारी योजना में राष्ट्रपति को एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण अधिकारी बनाया गया है और अपने संविधान में हमने उस प्रमुख कार्यपालक का स्थान

दिया है। कार्यपालिका शक्ति के साथ-साथ उसी मात्रा तक उसकी विधायिनी शक्ति भी विस्तृत हो जाती है। इसलिये यहां हम ब्रिटेन की नकल नहीं कर रहे हैं बल्कि हम अपनी ही कोई स्वतंत्र व्यवस्था क्यों न रखें पर उसमें भी हम उसी नतीजे पर पहुंचेंगे। इसलिये यह जरूरी है कि प्रेसिडेण्ट (राष्ट्रपति) शब्द यहां रहने दिया जाये अन्यथा अनुच्देद में एक त्रुटि रह जायेगी।

मैं सभा से साग्रह करूंगा कि वह इस अनुच्छेद को ज्यों का त्यों पास करे और सभी संशोधनों को अस्वीकार कर दें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): इनमें से किसी भी संशोधन को मैं नहीं स्वीकार कर रहा हूं और न ही यही समझता हूं कि इनके उत्तर देने की कोई आवश्यकता है।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं एक-एक करके संशोधनों पर मत लेता हूं। संशोधन नं. 1358 । मसला यह है कि:

"अनुच्छेद 66 से 'and two Houses to be known respectively as the Council of States' शब्द निकाल दिये जायें।"

संशोधन अस्वीकृत रहा।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 1356 । प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 66 में 'There shall be a Parliament for the Union which' शब्दों की जगह 'The Legislature of the Union shall be called the Indian National Congress and शब्द रखे जायें।"

संशोधन नामंजूर हुआ।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 1357 । मसला यह है कि:

"अनुच्छेद 66 से 'the President and' शब्द निकाल दिये जायें।

संशोधन नामंजूर हुआ।

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 66 को विधान का अंग माना जाये।"

प्रस्ताव पास हुआ।

अनुच्छेद 66 को विधान में शामिल किया गया।

अनुच्छेद 67

***उपाध्यक्ष:** अब हम अनुच्छेद 67 को लेते हैं। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 को विधान का अंग समझा जाये।"

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में जो संशोधन आये हैं उन पर हम किस तरीके से विचार करें, इसके बारे में मैं सुझाव आपकी सेवा में रखता हूं। आप देखेंगे कि इस अनुच्छेद में संसद् के दोनों आगारों की रचना के सम्बन्ध में प्रकाश डाला गया है, यानी राज्य-परिषद् तथा लोक-सभा किस तरह बनेगी यही इसमें बताया गया है। इसमें कुल मिलाकर 9 खण्ड हैं और मेरा सुझाव यह है कि इस बात को मद्देनजर रख कर कि इस पर विचार करने में सहूलियत हो और अस्पष्टता न रहे, हम अभी इस अनुच्छेद को तीन भागों में विभक्त कर दें। एक भाग तो बना दें 1 से 4 तक के खण्डों का जिनमें राज्य-परिषद् की रचना का जिक्र है और दूसरा 5 से 7 तक के खण्डों का जिनमें लोक-सभा की रचना का जिक्र है और तीसरा 8 और 9 के खण्डों का जो दोनों ही आगारों के लिये समान रूप से लागू है और जिनमें प्रत्येक जनगणना के फलस्वरूप की जाने वाली पुनर्व्यवस्था का जिक्र है।

मैंने इस संशोधन में डॉ. अम्बेडकर से बात की थी और खुद उन्होंने ही मुझे यह बताया कि अपनी किताब में निशान लगा कर इसी तरह तीन भागों में इसे विभक्त किया है और तीसरी रीडिंग के समय इन खण्डों को ऊपर नीचे करने के लिए वह खुद प्रस्ताव रखेंगे। इसलिये इस खण्ड को अभी विभक्त करना शायद सम्भव न हो पर मैं आपसे यह अनुरोध जरूर करूंगा कि 1 से 4 तक के सम्बन्ध में यानी राज्य-परिषद् के सम्बन्ध में जो संशोधन आये हों उन सबको एक साथ लिया जाये और पहले उन पर विचार किया जाये और शेष अनुच्छेद को संशोधनों के लिये खुला रखा जाये। जब वाद-विवाद समाप्त हो जाये तो सब खण्डों को आप एक साथ रख दें। विचार सम्बन्धी स्पष्टता के ख्याल से मैं यह सुझाव दे रहा हूं ताकि माननीय सदस्यगण जब राज्य-परिषद् के सम्बन्ध में कुछ कहें तो अपनी बात को राज्य-परिषद् तक ही सीमित रखें और लोक-सभा के सम्बन्ध में उन्हें जो कुछ कहना हो उसे बाद में कहें जब लोक-सभा सम्बन्धी संशोधनों पर विचार हो।

***उपाध्यक्ष:** डॉ. अम्बेडकर, इस मसले के सम्बन्ध में यानी श्री भारती के सुझाव के सम्बन्ध में आपको भी कुछ कहना है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** वाद-विवाद की सहूलियत के ख्याल से जो सुझाव उन्होंने उपस्थित किया है, उससे मैं पूर्णत: सहमत हूं।

***उपाध्यक्ष:** तो हम संशोधनों को इसी क्रम से लेते हैं।

पहला संशोधन है नं. 1365 का। यह निषेधात्मक है अत: इसको उपस्थित करने की अनुमति नहीं दी जाती है।

संशोधन नं. 1366, 1367, 1379 और 1408 पर एक साथ विचार किया जा सकता है।

संशोधन नं. 1366 को अब पेश किया जा सकता है। यह श्री मोहनलाल गौतम के नाम में है।

चूंकि सभा भवन में वह महाशय उपस्थित नहीं हैं हम सब आगे बढ़ते हैं।

इसके बाद आता है संशोधन नं. 1367 । यह श्री लोकनाथ मिश्र के नाम में है।

श्री लोकनाथ मिश्र: चूंकि संशोधन नं. 1366 को हम छोड़ चुके हैं, मैं इस संशोधन को नहीं पेश करना चाहता हूं। अब यह ठीक नहीं बैठेगा।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** यह सवाल तो उठता नहीं है।

***उपाध्यक्ष:** दूसरा संशोधन है प्रो. के.टी. शाह के नाम से। वह है संशोधन नं. 1379 ।

***प्रो. के.टी. शाह:** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान् कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (2) को हटा दिया जाये।"

यह खण्ड (2) इस प्रकार है:

"इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जाने वाले सदस्य ऐसे व्यक्ति होंगे जिन्हें निम्न प्रकार के विषयों सम्बन्धी विशेष ज्ञान अथवा व्यावहारिक अनुभव है, अर्थात्–

(क) साहित्य, कला, विज्ञान और शिक्षा;

(ख) कृषि, मत्स्य-पालन और तत्सम्बद्ध विषय;

(ग) अभियंत्रणा (इंजीनियरी) और वास्तु शास्त्र;

(घ) लोक-प्रशासन और सामाजिक सेवाएं।"

[प्रो. के.टी. शाह]

खण्ड का जो वर्तमान रूप है वह दो कारणों से मुझे चुभता है। पहली बात तो यह है कि मनोनयन की जो बात यहां रखी गई है चाहे मनोनीत सदस्यों की संख्या कितनी ही कम क्यों न रखी गई हो। वह, हमारे विधान-मण्डलों की रचना की एकरूपता के प्रतिकूल है। और फिर इससे निर्वाचन सम्बन्धी सिद्धान्त का मूलत: हनन होता है। मेरा अपना मत यह है कि जिस रूप में हम संविधान बना रहे हैं उसमें हमें दोनों आगारों के लिये यही करना चाहिये कि उनमें शुद्धत: निर्वाचित सदस्य ही आयें और इसमें मनोनयन के सिद्धान्त को बिल्कुल ही हटा दिया जाये चाहे मनोनीत सदस्यों की संख्या कितनी भी नगण्य क्यों न हो। इस प्रकार से यदि आप मनोनीत सदस्यों को विधान-सभा में आने देंगे तो इसका एक मात्र परिणाम यह होगा; जैसा कि मैं कह चुका हूं, कि इससे विधान-मण्डलों की आन्तरिक एकरूपता जाती रहेगी। इसलिये हमें इससे बचना चाहिये और इस बात को हटा देना चाहिये।

दूसरा कारण जिसकी वजह से मैं इस खण्ड के प्रस्तुत स्वरूप को नापसन्द करता हूं वह यह है कि मनोनयन द्वारा जिन विभिन्न हितों या वर्गों को लाने की बात कही गई है उनको इसमें मिला जुला कर रख दिया गया है और पृथक्-पृथक् स्पष्ट रूप से उनको नहीं निर्दिष्ट किया गया है। ऐसा करना न तो तर्कसंगत है, न कार्यसंगत है और न सिद्धान्तत: संगत है।

उदाहरण के रूप में मैं आपको बताऊं कि यहां 'कला' का अलग उल्लेख किया गया है और 'विज्ञान' का अलग। विज्ञान में 'इंजीनियरिंग' या 'वास्तुशास्त्र' भी शामिल की जा सकती है और इन दोनों को एक पृथक् उपखण्ड में भी रखा गया है। इस बात को अब सभी मानते हैं कि 'वास्तुशास्त्र' एक ललित कला है। अगर ऐसा है तो मैं नहीं समझता कि इनका अलग-अलग उल्लेख क्यों किया किया गया है और व्यापक शब्द 'कला' के उल्लेख के बाद फिर दूसरे उपखण्ड में पृथक् रूप से 'वास्तुशास्त्र' का क्यों उल्लेख किया गया है। और फिर 'विज्ञान', 'साहित्य' एवं 'शिक्षा' इन तीनों का पृथक् रूप से उल्लेख किया गया है। ये तीनों ही एक-दूसरे से पूर्णत: पृथक् नहीं हैं। यहां भी मैं नहीं समझ पाता कि किस लिये इन तीनों का पृथक्-पृथक् उल्लेख किया गया है। क्योंकि आप सोचिये तो सही कि 'शिक्षा' में कला और विज्ञान को यदि विश्वद्यिालयों जैसी संस्थाओं के सिलसिले से आप शामिल करते हैं तो कोई कारण नहीं है कि विश्वविद्यालयों के नाम से ही इनका उल्लेख क्यों न किया जाये और कला, विज्ञान तथा साहित्य का विशेष उल्लेख करके इन्हें क्यों पृथक् रखा जाये?

और फिर आप साहित्य को साधारणत: ललित कला में शामिल समझा जाता है और कम से कम विश्वविद्यालयों में ऐसा ही माना जाता है। इसलिये साहित्य, विज्ञान और कला इन तीनों का पृथक् उल्लेख बिल्कुल असंगत, अतर्कयुक्त एवं...

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** क्या मैं यह बताऊं कि इस सम्बन्ध में एक संशोधन डॉ. अम्बेडकर पेश करने वाले हैं। उनका संशोधन है नं. 1380 उसमें इन सभी अंशों को हटा दिया गया है और रखा गया है केवल कला, विज्ञान एवं सामाजिक सेवा को। यदि मेरे माननीय मित्र के ध्यान में यह आता हो कि डॉ. अम्बेडकर का संशोधन स्वीकृत होगा तो इस मसले पर बहस की कोई जरूरत नहीं है। वह कृपया डॉ. अम्बेडकर के इस संशोधन नं. 1380 को देखें जिसमें उन्होंने इस समूचे खण्ड को हटा कर बदले में केवल चार श्रेणियां रखने की बात कही है। इसलिये मैं आपसे अनुरोध करूंगा, उपाध्यक्ष महोदय, कि आप माननीय सदस्य से कहें कि वह अपना भाषण संक्षिप्त कर दें।

***उपाध्यक्ष:** क्या माननीय वक्ता की समझ में माननीय सदस्य की यह बात आ रही है?

***प्रो. के.टी. शाह:** माननीय सदस्य के सुझाव को मैं अच्छी तरह समझ रहा हूं किन्तु मुझे कुछ बातें कहनी हैं और अगर अनुमति हो तो कहूं अन्यथा मुझे कुछ विशेष आग्रह नहीं है।

***उपाध्यक्ष:** आप अपनी बात कहिये।

***प्रो. के.टी. शाह:** धन्यवाद! इंजीनियरिंग को ही लीजिये। यह ज्यादा करके शिल्प-कला-विज्ञान (Technology) या अमेरिका में जिसे Technocracy कहते हैं, उसका विषय है और उसी नाम से यहां इसका उल्लेख होना चाहिये। शिल्प-कला-विज्ञान (Technology) इंजीनियरिंग के अलावा और भी बहुत सी बातें आ जायेंगी। खण्ड का जो वर्तमान रूप है वह बिल्कुल असंगत है।

एक दूसरा उदाहरण लीजिये सामाजिक सेवा का। इसमें सम्भवत: सार्वजनिक उपयोगिता की चीजें नहीं आती हैं। इसी तरह लोक-प्रशासन (Public Administration) जो यहां रखा गया है उसके सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। विधान-मण्डल की रचना के सम्बन्ध में लोक-प्रशासन शब्द का क्या प्रयोजन है यह मेरी समझ में आता नहीं है। क्या सिविल सर्विस वालों को लाने के अभिप्राय से यह रखा गया है? सर्वत्र सब लोगों की राय यही रही है कि सर्वोत्तम

[प्रो. के.टी. शाह]

यही है कि सिविल-सर्विस वालों को राजनीति से सर्वथा पृथक् रखा जाये। पर यहां 'लोक-प्रशासन' क्या इस अभिप्राय से रखा जा रहा है कि विभिन्न विभागों के प्रधान-कर्मचारियों को या उनके द्वारा नामजद किये गये व्यक्तियों को विधान-मण्डल में स्थान दिया जाये? पुराने भारतीय विधान में सेक्रेटरीज को विधान सभा में स्थान दिया गया था किन्तु मेरा ख्याल है कि अब उनके लिये इसकी गुंजाइश नहीं है। या 'सामाजिक सेवा' को आप 'शिक्षा' से भिन्न समझते हैं क्योंकि 'शिक्षा' का उल्लेख आप पृथक् रूप से कर चुके हैं? ख्याल तो यह किया जाता था कि 'सामाजिक-सेवा' के मद के द्वारा, जिसमें शिक्षा सबसे जरूरी है, चुनाव में सभी श्रेणियों के लोग लिये जायेंगे और इसके पृथक् उल्लेख की कोई आवश्यकता न होगी। किन्तु यदि आप उसका विशेष रूप से उल्लेख करना चाहते ही हैं तो मेरी समझ में नहीं आता कि क्यों आप केवल शिक्षा का पृथक् उल्लेख करते हैं। 'सामाजिक-सेवा' जैसे एक व्यापक शब्द को आप रखते हैं किन्तु फिर भी इसमें आप केवल सेवा को ही शामिल करते हैं शायद इसलिये कि आपने इसका पृथक् उल्लेख किया है। आप 'स्वास्थ्य' का उल्लेख नहीं करते हैं, जिसका कि पृथक् उल्लेख होना चाहिये।

इसलिये मुझे तो यही प्रतीत होता है कि यह वर्गीकरण बहुत ही असंगत है। मनोनीत सदस्यों को विधान-मण्डल में रखने की जो व्यवस्था की जा रही है उससे, मेरी समझ में, विधान-मण्डल की एकरूपता नष्ट हो जायेगी। इन दो प्रमुख कारणों से मेरा मत है कि यह समस्त हटा दिया जाना चाहिये और उसकी जगह कोई दूसरी चीज रखनी चाहिये। डॉ. अम्बेडकर के संशोधन द्वारा अवश्य ही कुछ हद तक हमारी आवश्यकता जरूर पूरी हो जाती है पर उसमें यह नहीं कहा गया है कि किस प्रकार से प्रतिनिधि लिये जायेंगे और मैं इसी बात का स्पष्ट उल्लेख चाहता हूं। चूंकि मुझे इस संशोधन पर पुनः बोलने का हक नहीं रहेगा और न आम बहस में ही भाग लेने का मुझे हक रहेगा इसलिये मैं इसे जरूरी समझता हूं कि सभा इस मसले पर मेरे दृष्टिकोण को जान ले।

***उपाध्यक्षः** आप संशोधन नं. 1408 को भी पेश कर सकते हैं।

***प्रो. के.टी. शाहः** मेरा यह प्रस्ताव है किः

"अनुच्छेद 67 का खण्ड (4) हटा दिया जाये।"

अनुच्छेद 67 के खण्ड (4) में कहा गया है किः

"राज्य-परिषद् में, प्रथम अनुसूची के भाग 2 में उस समय उल्लिखित रहे राज्यों के प्रतिनिधि ऐसी रीति से निर्वाचित होंगे, जैसी कि विधि द्वारा संसद् विहित करे।"

यहां भी मेरा सुझाव केवल इसी सिद्धान्त के आधार पर है कि विभिन्न अंगभूत राज्यों के प्रतिनिधान में समता रहनी चाहिये। क्षेत्र, जनसंख्या, साधन आदि के सम्बन्ध में इनमें परस्पर कुछ भी अन्तर क्यों न हो अथवा इनके महत्त्व को आंकने के लिये आप जो भी और तरीका क्यों न चुनें पर जब आपने संघानीय-संघ (Federal Union) के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है तो आपको, राज्यों को समान स्तर देना चाहिये।

इस कारण से खण्ड (4) के द्वारा स्थानों को वितरित करने का काम जो संसद् पर छेड़ा गया है मैं उससे असहमत हूं। किस राज्य को कितनी जगहें प्राप्त होंगी इसका उल्लेख खुद संविधान में आना चाहिये। मैंने एक दूसरा संशोधन भी भेजा है जिसमें कहा गया है कि राज्य-परिषद् में सभी राज्यों को समान प्रतिनिधान प्राप्त होना चाहिए अर्थात् उनको हर राज्य को समान संख्या में प्रतिनिधि भेजने का हक मिलना चाहिये। इस कारण से भी यह खण्ड निरर्थक प्रतीत होता है और मैं इसको हटाने का प्रस्ताव रखता हूं।

(संशोधन नं. 1368 और 1372 नहीं पेश किये गये।)

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं श्रीमान् कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) की जगह निम्नलिखित अंश रखा जाये:

(1) राज्य-परिषद् के 250 सदस्य होंगे जिनमें से–

(क) बारह सदस्य प्रधान द्वारा, इस अनुच्छेद के खण्ड (2) में बन्धानित रीति से, मनोनीत होंगे; तथा

(ख) शेष, राज्यों के प्रतिनिधि होंगे।"

एकमात्र महत्त्व की बात इसमें यह है कि मनोनीत सदस्यों की संख्या 15 से घटाकर 12 कर दी गई है।

***उपाध्यक्ष:** इस संशोधन पर 6 संशोधन आये हैं। एक-एक करके मैं उनको लेता हूं। पहला संशोधन है सूची 1 (छठे सप्ताह) का नं. 2 जो श्री लोकनाथ मिश्र के नाम से है।

***श्री लोकनाथ मिश्र:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान्, कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1369 में अनुच्छेद 67 के लिये प्रस्तावित खण्ड (1) में 'दो' शब्द की जगह 'एक' शब्द रखा जाये।"

[श्री लोकनाथ मिश्र]

इसका मतलब यह हुआ कि राज्य-परिषद् में 150 से अधिक सदस्य नहीं होंगे। इस संशोधन को रखने में यानी सदस्य संस्था को घटा कर 150 करने में मेरा केवल एक ही उद्देश्य है। अपने व्यावहारिक अनुभव के आधार पर हमने यही पाया है कि लोक-सभा हो या राज्य-परिषद् हो, उसमें बड़ी सदस्य संख्या रखने से कोई लाभ नहीं होता है। और हमें यह भी मालूम है कि योग्य एवं विधि निर्माण में रुचि रखने वाले सदस्यों को इतनी बड़ी संख्या में पाना बड़ा कठिन है। इस सभा में ही तीन सौ से अधिक सदस्य हैं और इसकी ही कार्यवाही से हमें यह पता चलता है कि कितने कम लोग हैं जो कार्यवाही में वास्तविक भाग लेते हैं और जिनकी यहां कुछ वास्तविक देन होती है।

***उपाध्यक्ष:** यह तो आप निन्दा कर रहे हैं, मैं इसकी अनुमति नहीं दे सकता।

***श्री लोकनाथ मिश्र:** मैं खेद प्रकट करता हूं श्रीमान्, पर यह निन्दा नहीं है। अस्तु, इसलिये मेरा निवेदन यह है कि बजाय 250 सदस्य रखने के अगर हम दूसरे आगार में केवल 150 सदस्य रखते हैं तो इससे हमारा प्रयोजन खूब सिद्ध हो जायेगा। ऐसा करते समय और पैसे की भी बचत होगी इसलिये मैं पुन: निवेदन करता हूं कि दूसरे आगार की सदस्य संख्या 250 से घटा कर 150 कर दी जाये।

***उपाध्यक्ष:** अब आता है सूची 1 का संशोधन नं. 3 जो श्री लक्ष्मीनारायण साहू के नाम में है।

***श्री लक्ष्मीनारायण साहू** (उड़ीसा : जनरल): (हिन्दी में बोलना आरम्भ किया)

***उपाध्यक्ष:** माननीय सदस्य से मेरा अनुरोध है। दक्षिण भारत से आये हुये बहुत से सदस्य हिन्दी नहीं जानते हैं। अगर वह उन्हें अपनी बात समझाना चाहते हैं तो यह अच्छा होगा कि वह अंग्रेजी में बोलें। मेरा यह अनुरोधमात्र है। उन्हें इस बात की पूर्ण स्वतंत्रता है कि वह जिस भाषा में चाहें अपनी बात कहें।

***श्री लक्ष्मीनारायण साहू:** नहीं श्रीमान्, मैं तो हिन्दी में ही बोलूंगा।

उपाध्यक्ष महोदय, मेरे नाम पर जो संशोधन प्रस्ताव यहां उपस्थित है उस प्रस्ताव को जाहिर करने के लिये मैं जो कुछ कहूंगा उसका यह सबब है कि हम लोग नौमिनेशन को नहीं चाहते हैं। नौमिनेशन जहां-जहां भी होता है वहां हम लोग बुरा समझते हैं। इसलिये हम जब अभी नये तरीके से यह कान्स्टीट्यूशन बनाते हैं तो हमको अच्छी तरह से सोचना चाहिए कि हम ऐसी हालत में इस नौमिनेशन को जितनी दूर हो सके हटा दें या नहीं। जहां-जहां भी नौमिनेशन है और जहां इंडाइरेक्ट एलेक्शन है यह भी एक तरीके का नौमिनेशन है, इसलिये मैं चाहता हूं कि हम लोग नौमिनेशन के ख्याल को जितनी दूर हो सके हटा दें।

पहले यह देखना चाहिये कि हमने नौमिनेशन से यहां जो पंद्रह आदमी रखे हैं और अब थोड़ा परिवर्तन करके बारह आदमी रखते हैं, किस लिये रखते हैं कि वे सब आदमी ऐसे विलक्षण हैं कि जिन लोगों को हम लेना चाहते हैं। परन्तु जब यह है तो यूनिवर्सिटी से हम लोग निर्वाचन करके ऐसे आदमी ला सकते हैं। इसमें क्या दिक्कत रहती है यह मेरी समझ में नहीं आता है। मैं चाहता हूं कि हम लोग जब, ऐसे आदमी जो रह जाते हैं उनको असेम्बली के भीतर या कौंसिल के भीतर लेना चाहते हैं तो वहां भी एलेक्शन होना चाहिये। जब तक यह हम लोगों के ख्याल में नहीं रहेगा तब तक हम लोग जो कान्स्टीट्यूशन बनाते हैं उसको बहुत आदमी बुरा समझेंगे। मान लीजिये हम बारह आदमी का नौमिनेशन करने के लिये प्रेजिडेण्ट को क्षमता दे देते हैं तो इसमें यह होगा कि बहुत आदमी यह कहेंगे कि प्रेजिडेण्ट ने फेवर किया है। जो असली आदमी, जो लायक आदमी है उसको न रख कर के अपने मन मुताबिक जो आदमी है उसको रख दिया है। यह झगड़ा बराबर रहेगा और प्रेजिडेण्ट जो हम समझते हैं कि हम लोगों में सब से बड़ा होगा, जो हम लोगों के सब आलोचना में शामिल होगा जो हम लोगों का साधारण स्वाधीन सार्वभैम शासन-तंत्र होगा, उसके नाम पर जो कलंक का टीका लग जायेगा तब बहुत खराब होगा। इसलिये मैं चाहता हूं कि इस नौमिनेशन को यहां कम से कम हटा दिया जाये और Functional Representation किया जाये। कोई-कोई कहते हैं कि आयरलैण्ड में यों टिकट दिया गया है और आयरलैण्ड में ऐसा कहा गया कि यहां वह कामयाबी नहीं हुई है। मैं कहता हूं वह पेनल कोड के तरीके से एलेक्शन करके वह जरूर कामयाब होगा। इस नौमिनेशन के बारे में ज्यादा मैं नहीं कहना चाहता हूं। सिर्फ एक बात मैं कहता हूं कि हम जब यह भारत में जितने भी कौंसिल और ऐसेम्बली के मेम्बर हैं सब जा करके एक आदमी के पास जाते थे और सब परामर्श करके यह काम चलाते थे। महात्मा गांधी के पास ऐसे भी कोई आदमी

[श्री लक्ष्मीनारायण साहू]

हैं जिसको हम नौमिनेशन में चाहते हैं उनको भीतर लाने के लिये वह जब नहीं आयेंगे तो उनके पास जाकर के हम लोग उनका परामर्श ले सकते हैं। कम से कम हम तो यह कर सकते हैं कि जो पण्डित आदमी हैं, जो ज्ञानी आदमी हैं और जो ऐलक्शन में आना नहीं चाहते हैं तो उन लोगों के पास हमको जाने में शर्म क्या है? महात्मा गांधी के पास हम जाते थे ऐसे ही जब कोई आदमी रह जायेंगे जिनको हम समझते हैं कि बहुत लायक आदमी हैं और ऐसेम्बली के एलेक्शन में नहीं आयेंगे तब तो हम उनके पास जा करके परामर्श ले सकते हैं। उनका हम एक Advisory Board बना सकते हैं। ऐसे अद्वितीय आदमी बाहर रह जायेंगे। विद्वान आदमी, तो हम उनका एक Advisory Board बना सकते हैं। उससे हम उनका परामर्श ले सकते हैं। ऐसा ही रूस में भी होता है। ऐसे ही हर एक मिनिस्टर का Advisory Board हम बना सकते हैं। ऐसा न करके हम जो नौमिनेशन बारह आदमियों का करेंगे तो बहुत टीका हो जायेगी प्रेजिडेण्ट पर कि यह favouritism करते हैं nepotism करते हैं। यह सब सुनने में अच्छा नहीं लगेगा इसलिये मैं चाहता हूं कि जो 12 आदमी हम नौमिनेशन में लेंगे उनको एक दम हटा देना चाहिये। ज्यादा मैं कुछ नहीं कहना चाहता हूं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): सूची 1 (छठे सप्ताह) के संशोधन नं. 5 को मैं नहीं पेश करना चाहता क्योंकि यह केवल शाब्दिक है। अत: मैं केवल संशोधन नं. 4 के सम्बन्ध में ही बोलूंगा।

मेरा प्रस्ताव यह है, श्रीमान्, कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1369 द्वारा प्रस्तावित, अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में '12 सदस्य शब्दों की जगह सभा की समस्त सदस्य संख्या के 6 प्रतिशत से अधिक नहीं' शब्द रखे जायें।"

***श्री एस.वी. कृष्णमूर्ति राव** (मैसूर): मेरा कहना यह है कि इस संशोधन को अनियमित करार दे दिया जाये क्योंकि मूल अनुच्छेद में मनोनीत सदस्यों की संख्या 15 रखी गई है और कुल सदस्य हैं 250। इस तरह 6 प्रतिशत रखने पर भी 15 ही होंगे।

श्री नजीरुद्दीन अहमद: 15 नहीं होंगे। मूल अनुच्छेद 67 में यह कहा गया है कि राज्य-परिषद् में 250 सदस्य होंगे किन्तु अब डॉ. अम्बेडकर के संशोधन में यह कहा गया है *250 से अधिक सदस्य नहीं होंगे*।

***उपाध्यक्ष:** वह अधिक से अधिक सदस्य संख्या कितनी हो, यह रखता है, इसलिये थोड़ा-सा अन्तर तो आयेगा ही। इस बात पर माथा-पच्ची करने की जरूरत नहीं है। आप अपनी बात कहिये।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** नये खण्ड में आपने यह रखा है कि सभा की सदस्य संख्या 250 से ज्यादा नहीं होगी। इसलिये डॉ. अम्बेडकर के संशोधन के हिसाब से राज्य-परिषद् की सदस्य संख्या 250 के नीचे ही कम या वेशी रहेगी पर 250 से ज्यादा न होगी, इसके अन्दर ही रहेगी। सभा में मनोनीत सदस्यों की संख्या, सभा की समस्त सदस्य संख्या के किसी अनुपात के आधार पर ही रहनी चाहिये। उसी हिसाब से मनोनीत सदस्यों की संख्या भी घटनी या बढ़नी चाहिये। इसीलिये मैंने 6 प्रतिशत का सुझाव रखा है जिसके हिसाब से 15 मनोनीत सदस्य केवल उसी सूरत में होंगे जब आप सभा की अधिकतम सदस्य संख्या को लें, अन्यथा अगर उनकी संख्या अधिकतम से कम रहती है तो मनोनीत सदस्यों की संख्या भी घट जायेगी। इन दोनों की संख्या में एक निश्चित अनुपात रहना चाहिये। अगर आप घटा कर मनमाने तौर पर 12 कर देते हैं तो सम्पूर्ण सदस्य संख्या से इसका कोई अनुपात न बैठेगा। हो सकता है कि सभा में सदस्यों की सही संख्या इससे कहीं कम हो। इसलिये मेरा कहना यह है श्रीमान्, कि समस्त सदस्य संख्या पर 6 प्रतिशत के अनुपात से मनोनीत सदस्यों की संख्या निश्चित करना अधिक सुविधाजनक एवं संगत है।

[सूची 1 (छठे सप्ताह) का संशोधन न. 6 नहीं पेश किया गया।]

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मुझे यह सुझाया गया है कि अच्छा होगा कि मैं अपने संशोधन को अभी पेश करने के बजाय तब पेश करूं जब डॉ. अम्बेडकर अपना संशोधन नं. 1378 पेश कर चुकें और उनके इस संशोधन के बारे में ही अपने संशोधन को रखूं। मेरे लिये तो यह एक-सी बात है चाहे मुझे अभी पेश करने की इजाजत दी जाये या बाद में। यदि आप मेरी बात से सहमत हों तो मैं इसे बाद में पेश करूं।

***उपाध्यक्ष:** मैं सहमत हूं।

अल्पकालिक सूचना से आये हुये, सरदार हुकुमसिंहजी के एक संशोधन को मैंने सूची में रख लिया है। वे उसे पेश कर सकते हैं।

***सरदार हुकमसिंह** (पूर्वी पंजाब : सिख): उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1369 में, अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में 'प्रवाहित रीति से' शब्दों की जगह 'दिखाई गई श्रेणियों में से' शब्द रखे जायें।"

लोग ऐसा सोच सकते हैं कि यह बहुत साधारण-सी बात है किन्तु मैं निवेदन करूंगा, अनुरोध करूंगा कि मेरी बात पर ध्यान दिया जाये क्योंकि मेरा ख्याल है कि मेरे संशोधन में कुछ तत्व है।

संशोधन नं. 1369 में यह कहा गया है कि इस अनुच्छेद के खण्ड (2) में प्रावहित रीति से राष्ट्रपति 12 सदस्यों को मनोनीत करेगा। इस संशोधन के अनुसार, हमें यह आभास मिलता है कि अनुच्छेद 67 के खण्ड (2) में वह रीति उल्लिखित हो गई है जिसके अनुसार राष्ट्रपति 12 सदस्यों को मनोनीत करेगा। किन्तु खण्ड में रीति का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। हमें यहां केवल इसी बात का उल्लेख मिलता है कि प्रस्तुत अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) के अधीन राष्ट्रपति जिन व्यक्तियों को मनोनीत करेगा वे ऐसे व्यक्ति होंगे जिनको अमुक-अमुक विषयों का विशेष ज्ञान एवं व्यावहारिक अनुभव होगा। खण्ड (2) में उस रीति का कोई उल्लेख नहीं है जिसके मुताबिक राष्ट्रपति उनको मनोनीत करेगा। वहां केवल नागरिकों की श्रेणियों का उल्लेख कर दिया गया है और ये श्रेणियां भी बतौर उदाहरण के रखी गई हैं, कोई विस्तृत सूची नहीं दी गई है कि इसी वर्ग के लोग मनोनीत किये जायेंगे। केवल इतना कहा गया है कि इन श्रेणियों से राष्ट्रपति 12 व्यक्तियों को मनोनीत करेगा। मेरी आपत्ति केवल यह है कि बजाय यह कहने के कि राष्ट्रपति द्वारा 12 व्यक्ति प्रावहित रीति से मनोनीत किये जायंगे, हमें यहां यह कहना चाहिये कि इन श्रेणियों के लोगों में से, जिनका उल्लेख खण्ड (2) में है, राष्ट्रपति 12 को मनोनीत करेगा। यही मेरा संशोधन है और मेरा अनुरोध है कि इस पर समुचित ध्यान दिया जाये।

(संशोधन नं. 1370 नहीं पेश किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** तीन संशोधन ऐसे हैं जिन पर एक साथ विचार होना चाहिये। वे हैं नं. 1371, 1373 तथा 1374 के। इनमें से पहला सर्वाधिक विस्तृत मालूम पड़ता है और इसे ही पेश किया जा सकता है।

(संशोधन नं. 1371, 1373 और 1374 पेश नहीं किये गये।)

अब आता है संशोधन नं. 1375 और 1376 । नं. 1375 को पेश किया जा सकता है। नं. 1376 बहुत कुछ 1375 से मिलता-जुलता है। इसलिये मैं इस पर राय भी नहीं लूंगा। डॉ. अम्बेडकर, आप संशोधन न. 1375 को उपस्थित करें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं श्रीमान् कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) के परन्तुक को हटा दिया जाये।"

अगर आपकी अनुमति हो तो मैं संशोधन नं. 1378 को भी पेश कर दूं। इस परन्तुक की जगह दूसरा अंश रखने की बात इसमें कही गई है।

***उपाध्यक्ष:** हां, आप पेश कर सकते हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरा यह प्रस्ताव है श्रीमान्, कि: "अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड जोड़ा जाये:

'(1क) राज्य-परिषद् के स्थानों का राज्यों के प्रतिनिधियों में बंटवारा, अनुसूची 3(ख) में इस बारे में दिये हुए बन्धनों के अनुसार होगा।'"

उपाध्यक्ष: अब पं. कुंजरू का संशोधन पेश किया जा सकता है। यह है न. 7 का।

पं. हृदयनाथ कुंजरू: उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (1क) में, जिस रूप में कि अभी वह उपस्थित किया गया है, निम्नलिखित शब्द और जोड़ दिये जायें:

'किन्तु शर्त यह है कि 'प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उस समय उल्लिखित रहे राज्यों के प्रतिनिधियों की कुल संख्या और उन राज्यों की समस्त जनसंख्या के बीच जो अनुपात होगा वह उस अनुपात से ज्यादा न होगा जो उस अनुसूची के भाग 1 और 2 में उस समय उल्लिखित रहे राज्यों के प्रतिनिधियों की कुल संख्या तथा ऐसे राज्यों की समस्त जनसंख्या के बीच होगा।'"

अनुच्छेद 67 के खण्ड 1 के परन्तुक, जिसे हटाने के लिये डॉ. अम्बेडकर ने प्रस्ताव रखा है, वह इस प्रकार है:

"पर प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उस समय उल्लिखित रहे राज्यों के प्रतिनिधियों की समस्त संख्या इस शेष के चालीस प्रतिशत से अधिक न होगी।"

अर्थात् राज्य-परिषद् के निर्वाचित सदस्यों के चालीस प्रतिशत से अधिक उनकी संख्या न होगी।

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

अब डॉ. अम्बेडकर ने प्रस्ताव यह रखा है कि प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों को राज्य-परिषद् में उतने ही स्थान दिये जायेंगे जितने का प्रावधान अनुसूची 3 ख में हो यह अनुसूची 3 ख हमारे सामने नहीं है इसलिये हमें यह नहीं मालूम हो पाता है कि प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के प्रतिनिधियों तथा प्रथम अनुसूची के भाग 1 में उल्लिखित राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या में क्या अनुपात रहेगा।

पहली गोलमेज कांफ्रेंस के दौरान में रियासती नरेशों ने इस बात का आग्रह किया था कि विधान सभा तथा राज्य-परिषद् दोनों ही आगारों में उनकी अपनी जनसंख्या के अनुपात से अधिक स्थान मिलने चाहिये। दूसरे शब्दों में यह कहिये कि केन्द्रीय विधान-मण्डल के दोनों ही आगारों में उन्होंने अपने लिये पासंग या वजन मांगा था और इसीलिये 'भारत शासन अधिनियम, 1935' में यह रखा गया था कि राज्य-परिषद् में रियासतों के प्रतिनिधियों की संख्या, राज्य-परिषद् के मनोनीत या निर्वाचित सभी सदस्यों की संख्या के चालीस प्रतिशत के अनुपात से होगी। विधान-सभा के सम्बन्ध में यह कहा गया था कि रियासतों के प्रतिनिधियों की संख्या, सभा के समस्त निर्वाचित सदस्यों की एक तिहाई के हिसाब से होगी। संघ शक्ति समिति (Union Powers Committee) ने यह सिफारिश की कि प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या का अनुपात राज्य-परिषद् में, वहां के समस्त निर्वाचित सदस्यों के चालीस प्रतिशत के हिसाब से होना चाहिये। दूसरे शब्दों में यह कहिये कि राज्य-परिषद के सम्बन्ध में तो संघ शक्ति समिति ने भारत शासन अधिनियम, 1935 में रखी हुई व्यवस्था को मन्जूर कर लिया पर विधान-सभा के सम्बन्ध में उसने उस व्यवस्था को नहीं माना जो कि भारत शासन अधिनियम, 1935 में दी हुई है। प्रस्तुत संविधान के मसौदे में संघ शक्ति समिति की उन सिफारिशों को स्वीकार किया गया है जिन्हें गत वर्ष सभा ने मंजूर किया था। किन्तु अब डॉ. अम्बेडकर यह प्रस्ताव रखते हैं कि प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या किसी प्रतिशत के हिसाब से निर्धारित नहीं रहेगी किन्तु उन्हें राज्य-परिषद् में जितने स्थान दिये जायेंगे वह एक अनुसूची में दी हुई व्यवस्था के हिसाब से दिये जायेंगे और जो अनुसूची संविधान में जोड़ दी जायेगी। श्रीमान् भारत शासन अधिनियम, 1935 जब ब्रिटिश-पार्लियामेण्ट में पास हुआ था तो उस समय की स्थिति आज से बिल्कुल भिन्न थी। उस समय राज्य-संघ में शामिल होने के लिये केवल किसी कीमत पर ही तैयार थे। इसके अलावा,

उनको पासंग देना ब्रिटिश हित के अनुकूल भी था। किन्तु आज की परिवर्तित स्थिति और व्यवस्था में, इन राज्यों की, जिनका कि पहले 'भारतीय रियासतें' के नाम से उल्लेख किया जाता था, स्थिति आज बिल्कुल बदल गई है। उनके जो प्रतिनिधि यहां आये हैं स्वयं वे ही यह चाहते हैं कि उनके प्रदेशों का दर्जा वही हो जाना चाहिये जो कि प्रान्तों का है। इसलिये कोई कारण नहीं है कि रियासतों के लिये, भारत शासन अधिनियम में दिये हुए पासंग को अब क्यों जारी रखा जाये।

जैसा कि मैं कह चुका हूं श्रीमान् भारत शासन अधिनियम, 1935 में लोक-सभा के सम्बन्ध में रियासतों को प्रतिनिधान देने की जो व्यवस्था है उसे अपने संविधान के मसौदे में स्थान नहीं दिया गया है। अनुच्छेद 67 के खण्ड (5) को अगर माननीय सदस्य पढ़ें तो देखेंगे कि उसके उपखण्ड (ख) का जो परन्तुक है उसमें कहा गया है कि:—प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उस समय उल्लिखित रहे राज्यों के प्रतिनिधियों की समस्त संख्या का, उनकी समस्त जनसंख्या से अनुपात, उस अनुपात से अधिक न होगा जो उक्त अनुसूची के भाग 1 और 2 में उस समय उल्लिखित रहे राज्यों के प्रतिनिधियों की समस्त संख्या का, इन राज्यों की समस्त जनसंख्या से है। संविधान सम्बन्धी मसौदे में इस बात पर आग्रह किया गया है कि लोक-सभा में राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या उनकी जनसंख्या के हिसाब से होनी चाहिये मेरा कहना यह है कि प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों को राज्य-परिषद में जो प्रतिनिधान दिया जाये वह भी उसी सिद्धान्त के आधार पर दिया जाये जो कि लोक सभा के सम्बन्ध में रखा गया है। मेरे सामने यह दलील पेश की जा सकती है कि राज्य-परिषद् हमारा ऊपर वाला आगार होगा इसलिये वहां, भाग 3 तथा भाग 1 और 2 में उल्लिखित राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या उनकी समस्त जनसंख्या के आधार पर निर्धारित नहीं की जा सकती। अगर आपत्ति के रूप में यह दलील मेरे सामने रखी जाये तो मैं उसे व्यर्थ समझता हूं। अगर मैंने यह कहा होता कि अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) के उपखण्ड (ख) के परन्तुक में शब्द '40' की जगह '25' या '30' रख दिया जाये तब तो ऐसी आपत्ति नहीं पेश की जाती। किन्तु इसी उद्देश्य को मैं भिन्न रूप से प्राप्त करना चाहता हूं। इसलिये मेरे संशोधन पर इस बिना पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती है कि ऐसा करने से, राज्य-परिषद् की रचना के पीछे जो मूलभूत सिद्धान्त है, उसका विरोध होगा।

और फिर यदि माननीय सदस्यगण अनुच्छेद 67 के खण्ड 8 को पढ़ें तो देखेंगे कि वहां यह कहा गया है:—"प्रत्येक जनगणना की समाप्ति पर राज्य-

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

परिषद् में विविध राज्यों का और लोक-सभा में विविध निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधान, इस संविधान के अनुच्छेद 289 के प्रावधानों के अधीन रहते हुये, ऐसे प्राधिकारी द्वारा ऐसी रीति से और ऐसी तिथि से प्रभावी होने के लिये, पुनर्व्यवस्थापित किया जायेगा जैसा कि संसद विधि द्वारा निश्चय करे।" इससे प्रकट होता है कि प्रतिनिधान निश्चित करने में, न केवल लोक-सभा के सम्बन्ध में बल्कि राज्य-परिषद् के सम्बन्ध में भी, जनसंख्या का ख्याल रखा जायेगा। इसलिये मेरा संशोधन, इस खण्ड (8) के प्रावधानों से सर्वथा संगत है।

डॉ. अम्बेडकर ने इस सम्बन्ध में एक नया प्रस्ताव जरूर रखा है किन्तु फिर भी मैंने संशोधन जो पेश किया है श्रीमान् वह केवल इस कारण से कि उनके प्रस्ताव से यह साफ नहीं होता कि प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों को राज्य-परिषद् में जो प्रतिनिधान प्राप्त होगा वह वहां के समस्त निर्वाचित प्रतिनिधियों के 40 प्रतिशत से ज्यादा न होगा या यह कि उनकी समस्त जनसंख्या के हिसाब से जितने स्थानों के वे अधिकारी हैं उससे ज्यादा उन्हें नहीं मिलेंगे। यह सच है कि संविधान में यह तो नहीं लिखा जायेगा कि प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों को राज्य-परिषद् में जितने स्थान दिये जायेंगे उनका, उनकी समस्त जनसंख्या से एक निश्चित अनुपात बैठेगा ही किन्तु ऐसा तो किया ही जा सकता है कि रियासतों को जो प्रतिनिधित्व दिया जाये वह कार्यरूप में इसी हिसाब से हो। मैं इसे रोकना चाहता हूं और यह सुनिश्चित कर देना चाहता हूं कि प्रथम अनुसूची के भाग 3 तथा भाग 1 और 2 में उल्लिखित राज्यों के जो स्थान वितरित किये जायें वह उनकी जनसंख्या के हिसाब से किये जायें। हमने संविधान से न केवल पृथक्-निर्वाचन पद्धति को बल्कि वजन देने की पद्धति को भी हटा दिया है। अगर विविध सम्प्रदायों के सम्बन्ध में वजन दिये जाने की पद्धति को हम हटा रहे हैं तो कोई कारण नहीं है कि प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उल्लिखित राज्यों के सम्बन्ध में ही हम इसे क्यों बने रहने दें।

इन कारणों से, श्रीमान् आशा है कि मेरा संशोधन खुद डॉ. अम्बेडकर को पसंद होगा और सुतरां सभा भी उसे पसन्द करेगी।

***उपाध्यक्ष:** अब सूची 1 का संशोधन नं. 9 लिया जायेगा जो प्रो. शिब्बन-लाल सक्सेना के नाम से है।

प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं अपना संशोधन सभा के सामने रखता हूं। वह इस प्रकार से है:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1378 में, अनुच्छेद 67 के लिये प्रस्तावित खण्ड (1क) की जगह निम्नलिखित अंश रखा जाये:

'(1क) राज्यों के प्रतिनिधियों को, राज्य-परिषद् में, निम्नलिखित सिद्धान्त के आधार पर स्थान वितरित किये जायेंगे:

(i) प्रथम अनुसूची के प्रत्येक राज्य के लिये, प्रथम 70 लाख की आबादी तक प्रति दस लाख पर 1 प्रतिनिधि होगा किन्तु शर्त यह है कि किसी भी राज्य का, राज्य-परिषद् में एक से कम प्रतिनिधि न होगा।

(ii) प्रथम 70 लाख की आबादी के ऊपर प्रति 20 लाख पर 1 प्रतिनिधि होगा।'"

अपने इस संशोधन के साथ मैंने एक अंक चित्र भी दे दिया है जिसमें दिखाया गया है कि प्रत्येक राज्य को कितने स्थान दिये जायें। मैं नहीं समझ पाता कि वह चित्र यहां क्यों नहीं है। जब हम संविधान-समिति की रिपोर्ट पर विचार कर रहे थे तो हमने तय किया था कि प्रत्येक प्रान्त के लिये अधिक से अधिक प्रतिनिधि संख्या 20 होगी और हमने हर प्रान्त के लिये अलग संख्या निश्चित कर दी थी। उस समय हमने जिस पद्धति को तय किया था वह तर्कसंगत और कायदे की नहीं थी। मेरा ख्याल यह है कि एक निश्चित आबादी तक हमें इस प्रतिनिधि-संख्या को जनसंख्या के आधार पर रखना चाहिये। यही कारण है कि मैंने अपने संशोधन में यह रखा है कि 70 लाख की आबादी तक तो प्रति दस लाख पर 1 प्रतिनिधि हो और उसके ऊपर की आबादी पर प्रति बीस लाख पर एक प्रतिनिधि हो। इस तरह बड़े-बड़े राज्यों को, कम प्रतिनिधान मिलेगा और छोटे-छोटे राज्यों को कुछ पासंग मिल जायेगा जो हम उन्हें देना चाहते हैं। यह व्यवस्था अधिक व्यावहारिक होगी। अन्यथा तो यह होगा कि संयुक्तप्रान्त को 20 स्थान मिलेंगे तो बिहार को भी उतने ही स्थान मिलेंगे। जो अंक चित्र मैंने संशोधन के साथ भेजा था अगर वह यहां उपलब्ध होगा तो यह बात साफ हो जायेगी कि किन राज्यों को कितने स्थान मैंने दिये हैं। स्थानों को वितरित करने के लिये जो पद्धति मैंने यहां उपस्थित की है वह बहुत ही समुपयुक्त है और मैं सभा से अनुरोध करूंगा कि वह उसे स्वीकार करे।

***उपाध्यक्ष:** सूची 1 का संशोधन नं. 10 अब लिया जायेगा जो श्री फूलसिंह के नाम से है।

(सूची 1 का संशोधन नं. 10 पेश नहीं किया गया।)

अब सूची 2 का संशोधन नं. 2 लिया जाता है जो श्री लोकनाथ मिश्र के नाम से है।

***श्री लोकनाथ मिश्रः** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं, श्रीमान्, किः

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1378 में, अनुच्छेद 67 के लिए प्रस्तावित खण्ड (1क) में 'अनुसूची 3ख में, इस बारे में, दिये हुये बन्धनों के अनुसार होगा' शब्दों की जगह ये शब्द रखे जायें कि 'प्रत्येक अंगभूत राज्य को समान प्रतिनिधान के आधार पर स्थान दिये जायें और स्थानों की संख्या किसी भी दशा में तीन से ज्यादा न होगी।"

डॉ. अम्बेडकर के संशोधन पर जो मैंने यह संशोधन रखा है उसका कारण यह है। चूंकि राज्य-परिषद् द्वारा राज्यों का प्रतिनिधान होगा इसलिये उचित यह है कि हर राज्य-घटक को एक इकाई माना जाय और हर इकाई को समान प्रतिनिधान दिया जाये। यदि ऐसा नहीं होता है तो यह कहना सर्वथा अर्थ-शून्य है कि राज्य-परिषद् द्वारा राज्यों का प्रतिनिधित्व किया जायेगा। वस्तुतः अमेरिका में तथा अन्य देशों में, जहां राज्यों के हितों का प्रतिनिधित्व करने के लिये दूसरे आगार की व्यवस्था है, वहां हर राज्य को समान प्रतिनिधान दिया गया है। हमें यह भी मालूम है कि राज्य-परिषद् के निर्वाचित सदस्यों को राज्य के विधान-मण्डलों का निचला आगार चुनेगा। ऐसी सूरत में अगर हम यह कहते हैं कि इनका चुनाव किसी दूसरे तरीके से होगा यह कि या तो जनसंख्या के हिसाब से होगा या और किसी आधार पर किन्तु सदस्यों के लिये योग्यता वही रहेगी जो निर्वाचन करने वाले आगार के सदस्यों की रखी गई है तो राज्य-परिषद् से कोई वास्तविक प्रयोजन सिद्ध न होगा सिवाय इसके कि व्यर्थ में एक लोक-सभा और बन जायेगी वस्तुतः जो लोक-सभा होगी; उसमें तो राज्यों की जनता के ही प्रतिनिधि रहेंगे क्योंकि लोक-सभा के लिये राज्य, जो प्रतिनिधि भेजेंगे वह भी करीब-करीब उसी आधार पर भेजेंगे। इसलिये अगर हम इस सिद्धान्त को, कि हर राज्य एक इकाई है और वह अपने प्रतिनिधि राज्य-परिषद् में इसलिये भेजते हैं कि उनके विशेष हितों का संरक्षण हों, नहीं स्वीकार करते हैं तो राज्यों के प्रतिनिधान के लिये एक दूसरे आगार को रखने का कोई अर्थ नहीं है। अनुसूची 3 ख को यद्यपि, इस सम्बन्ध में हम विधान में रख रहे हैं फिर भी मैं समझता हूं कि इस बात को और स्पष्ट कर देना चाहिये कि राज्य-परिषद् में राज्यों के हितों का ही प्रतिनिधान रहेगा, सुतरां सभी राज्यों को, स्वायत्त-शासन प्राप्त इकाइयों के रूप में उस आगार के लिये समान स्थान प्राप्त रहेंगे। इसी कारण से मैं यह सुझाव दे रहा हूं कि राज्य-परिषद् में राज्यों को जो स्थान दिये जायें वह समान-प्रतिनिधान के सिद्धान्त के आधार पर ही दिये जायें और किसी भी

दशा में उनके प्रतिनिधियों की संख्या तीन से ज्यादा न हो। तीन तक ही में क्यों उनके प्रतिनिधित्व को सीमित रख रहा हूं? मेरा ख्याल है कि अगर हर राज्य से तीन प्रतिनिधि राज्य-परिषद् में आते हैं तो राज्य के विशेष हितों को सुरक्षित रखने के लिये वे यथेष्ट हैं और उनकी विशेष समस्याओं का वे सम्यक् रूप से समाधान कर सकेंगे। आखिर हमारा यह आगार यानी राज्य-परिषद् तो ऐसा आगार होगा जहां लोक-सभा से आये हुए प्रस्तावों पर विचार किया जायेगा और शान्तिपूर्वक विचार के लिये ही इस आगार की सृष्टि की जा रही है। इस आगार में विशेष ज्ञानसम्पन्न व्यक्ति ही रहेंगे और वह जो कुछ कहेंगे उसको सदस्य इसीलिये सुनेंगे कि उनके कथन में तत्व की बात होगी, गम्भीरता होगी और अपने भाषणों में सम्बन्धित प्रश्न पर विशेष प्रकाश डालेंगे न कि इसलिये कि सदस्य होने के नाते उन्हें बोलने का अधिकार है। उनकी संख्या कितनी हो यह बात हमारे लिये महत्व नहीं रखती और फिर तीन की संख्या मैं समझता हूं हमारे प्रयोजन के लिये पर्याप्त है।

***उपाध्यक्ष:** सूची का संशोधन नं. 12 अब लिया जायेगा जो श्री लक्ष्मीनारायण साहू के नाम में है।

श्री लक्ष्मीनारायण साहू: उपाध्यक्ष महोदय, मैंने जो संशोधन प्रस्ताव इस समय रखा है वह यह है:

"इस बात के लिये कार्रवाई की जानी चाहिये कि जहां तक सम्भव हो विभिन्न इकाइयों के लोगों को प्रतिनिधित्व प्राप्त रहे।" (Steps should be taken to see that, as far as possible, men from different units are represented.) यह प्रस्ताव देने का मतलब यह है कि जब मैंने कहा था कि इसके आगे के अनुच्छेद 67 के खण्ड एक का उपखण्ड "ए" को निकाल देना चाहिये तो इसका मतलब यह है कि और मैं चाहता हूं कि सब स्टेट्स के रिप्रेजेण्टेटिव बनकर कौंसिल ऑफ स्टेट में आयें।

इसलिये दूसरा जो संशोधन प्रस्ताव में लाया हूं उसमें यह है कि हर एक यूनिट जिससे प्रतिनिधि होकर आ सकेंगे ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये। यह शिड्यूल 3 "बी" बनाया गया है इसमें इसका प्रबन्ध किया गया है, इसमें कोई शक नहीं। परन्तु किसी प्रान्त से किसी यूनिट से कितने प्रतिनिधि आयेंगे उसका कुछ परिचय यहां नहीं दिया गया है। इसलिये हम लोगों को कुछ अच्छा मालूम नहीं होता कि इसका कम्पोजीशन कैसे हो सकता है। इसलिये पं. हृदयनाथ कुंजरू जी ने जो संशोधन प्रस्ताव किया है, मैं उसकी ताइद करता हूं और श्री शिब्बनलाल सक्सेना का जो प्रस्ताव है उसका मतलब भी यही है कि ऐसा करना चाहिये कि

[श्री लक्ष्मीनारायण साहू]

जिसमें हर एक स्टेट प्रतिनिधित्व कर सकता है। परन्तु अभी मैं देखता हूं। कि दो तीन तरीके की स्टेट अभी हैं, जब हम लोग कोशिश करके एक तरीके की स्टेट बना सकेंगे तो अच्छा है। ऐसा हो सकता है कि अभी जो छोटी-छोटी स्टेट नैगलैक्टिड (अवहेलित) हो गई हैं, बाहर हैं, वह सब स्टेट चाहेंगी कि हम लोगों का कोई प्रतिनिधि वहां जाना चाहिये। परन्तु ऐसी अभी छोटी-छोटी स्टेट्स हैं जिसमें प्रतिनिधि आने की कोई सुविधा नहीं है। इसलिये मैं यह संशोधन रख रहा हूं "Steps should be taken to see that, as far as possible, men from different units are represented."

इसके बाद मैं इस मामले में ज्यादा नहीं कहना चाहता हूं।

***प्रो. के.टी. शाह:** श्रीमान्, सविनय मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) का परन्तुक हटा दिया जाये और खण्ड (1) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(1a) Parliament may by law establish a consultative Council of Representatives of Agriculture (25, Industry (15), Commerce (10), Mining, Forestry and Engineering (10), Public Utilities (5), Social Services (5), Economists (5), to advise Parliament and the Council of Ministers on all matters of policy affecting Agriculture, Industry, Commerce, Mining, Forestry, Engineering, Public Utilities and Social Services; and prepare or scrutinise proposals for legislation concerning any of these items.

Explanation.—The number given in the brackets after each group is the total number of representative from each section.

Members of this Council shall have, individually or collectively no administrative or executive duties, functions or responsibilities. Every member of this Council shall be paid such salaries, emoluments or allowances as Parliament may from time to time provide.'"

[(1क) संसद विधि द्वारा एक परामर्शदातृ,-परिषद् स्थापित कर सकती है जिसमें कृषि के (25), उद्योग-धन्धे के (15), व्यापार के (10), माइनिंग, फारेस्ट्री और इंजीनियरिंग के (10), सार्वजनिक उपयोगिताओं के (5), सामाजिक सेवाओं के (5) तथा अर्थ शास्त्रज्ञों के (5) प्रतिनिधि होंगे और वह परिषद्, संसद तथा मन्त्रिमण्डल को नीति-विषयक प्रश्नों पर, जिनका कि कृषि, उद्योग-धन्धा, व्यापार, माइनिंग-फारेस्ट्री और इंजीनियरिंग, सार्वजनिक उपयोगिता तथा सामाजिक सेवाओं पर प्रभाव पड़ता हो परामर्श देगी; और इनमें से किसी भी विषय के बारे में कानून बनाने के लिये प्रस्ताव तैयार करेगी या तद्विषयक प्रस्तावों की छानबीन करेगी।

व्याख्या—हर वर्ग के आगे कोष्ठक में जो संख्या दी हुई है वह हर वर्ग के प्रतिनिधियों की कुल संख्या है।

इस परिषद् के सदस्यों के, व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से, प्रशासन सम्बन्धी या कार्यपालक कर्तव्य, प्रकार्य अथवा दायित्व न होंगे। परिषद् के प्रत्येक सदस्य को ऐसे वेतन, परिलाभ या भत्ते दिये जायेंगे जिनका संसद समय-समय पर प्रावधान करे।]

यह सुझाव बिल्कुल मौलिक है, कहीं से लिया नहीं गया है और मसौदा समिति के माननीय अध्यक्ष को मैं इसका विश्वास दिला सकता हूं। वह किसी भी वर्तमान संविधान को देखकर मेरे कथन की सच्चाई खुद जान सकते हैं। इस तरह की कुछ मिलती-जुलती व्यवस्था, जर्मन के वाइमार-संविधान में, जो कि अब प्रयोग-शून्य है, पाई जाती है। किन्तु उस व्यवस्था में भी यहां आमूल सुधार कर दिया गया है।

यहां जो सुझाव रखा गया है उसमें तीन बातें हैं। एक तो परिषद् बिल्कुल परामर्शदातृ मात्र होगी; उसमें विशेष हितों के ही प्रतिनिधि होंगे और वे तद्विषयक यानी कृषि उद्योग, व्यापार आदि से सम्बन्ध रखने वाले संगठनों द्वारा निर्वाचित होंगे।

***डॉ. जीवराज एन. मेहता** (बड़ौदा): क्या मैं जान सकता हूं कि माननीय सदस्य ने चिकित्सा-व्यवसाय के सदस्यों को क्यों अपने संशोधन में स्थान नहीं दिया है?

* **प्रो. के.टी. शाह:** अगर आप उस दिशा में कोई संशोधन रखें तो मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूंगा। इस वर्ग के सदस्यों को रखना मैं भूल गया और इसके लिये आपसे क्षमा चाहता हूं। मेरे संशोधन में, पांडित्यपूर्ण, वकालती पेशे का या लिपिक-वर्ग का भी उल्लेख नहीं है। यदि सभा इनको भी यहां सम्मिलित कर ले तो मुझे उस पर कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु मैं इस बात को स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि जिन वर्गों को प्रतिनिधान देने की बात कही गई है वह किसी व्यवसाय विशेष के आर्थिक हितों के ख्याल से नहीं बल्कि समस्त देश के हित का ध्यान रखते हुये ही इन वर्गों का प्रतिनिधान देने की बात कही गई है।

यह परिषद् पूर्णत: परामर्शदातृ-परिषद् होगी और जैसा कि संशोधन में कहा गया है, इसके कार्यपालक या प्रशासन सम्बन्धी कोई प्रकार्य न होंगे। विधि निर्माण सम्बन्धी सभी प्रस्तावों पर, जो कि संसद् के समक्ष आयेंगे या जिन्हें संसद् "छानबीन के लिए इसके पास भेजेगी, यह संसद्" को अपनी सलाह देगी।

आजकल विधान-मण्डलों द्वारा जो कानून पास किये जाते हैं उनको सामूहिक रूप से या एक-एक करके देखने से मैं यह कहूंगा श्रीमान, कि विधि-निर्माण

[प्रो. के.टी. शाह]

का काम आज इतना जटिल हो गया है, और इतनी विविध समस्याओं के सम्बन्ध में इतने कानून बनते हैं कि संसद् के औसत सदस्यों के लिये, उनके सम्बन्ध में अपना मत निश्चित करना या खास पारिभाषिक भाषा में जो कानून आज बनते हैं या जिन्हें संसद् को पास करना पड़ता है, उनको समझना बड़ा कठिन है।

विधि-निर्माण का काम आज इतना बारीक होता जा रहा है कि वह एक ललित कला का रूप ग्रहण करता जा रहा है, न केवल प्रस्तावित कानून का मसौदा तैयार करने के ख्याल से जो स्वत: एक बड़ा ही जटिल काम है बल्कि इस ख्याल से भी कि कानून में विविध बातों का समावेश करना पड़ता है और विभिन्न हितों को सन्तुष्ट करना पड़ता है जिनके लिये की कानून बनता है। आज भी आप देखेंगे कि यह एक परिपाटी सी बन गई है और साधारणत: इसको बरता जाता है, कि जिन विविध हितों को संसद् में प्रत्यक्ष प्रतिनिधान नहीं मिला है वे सम्बन्धित विभाग के सामने अपनी बात कह सकते हैं और अपनी वैकल्पिक योजना भी पेश कर सकते हैं।

चाहे बीमा के सम्बन्ध में कानून बनाना हो या श्रमिकों के सम्बन्ध में या बैंकिंग, शिपिंग और ट्रेड मार्क के बारे में हो, इन सभी कारोबारों के लोग इस बात का पूरा ध्यान रखते हैं कि उनकी बात या उनका दृष्टिकोण अधिकारियों के समक्ष जरूर रखा जाये। जिस मन्त्री का उस कानून से सम्बन्ध रहता है वह आमतौर पर, कानून का अन्तिम रूप से मसौदा तैयार करने के पहले, इन लोगों की बात सुनता है। यदि सम्बन्धित मन्त्री सम्बन्धित हितों के लोगों से परामर्श नहीं करता है तो कभी-कभी प्रवर समिति (सिलेक्ट कमेटी) उस बिल पर सम्बन्धित हितों के प्रतिनिधियों की बात सुनती है या उनके आवेदन पर विचार करती है और उसके बाद तब जाकर संसद् द्वारा कानून पास होता है।

इस कारण मैं समझता हूं कि परामर्शदातृ-परिषद् का होना न केवल सम्बन्धित हितों के लिये लाभप्रद होगा बल्कि इसलिये भी कि आज देश जिस सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था के अधीन जीवन-यापन कर रहा है उससे उस कानून विशेष का सामंजस्य स्थापित करने में परिषद् सहायक हो सकेगी। आज अक्सर होता यह है कि जब भी कोई कानून विधान-मण्डल के समक्ष आता है तो केवल वही लोग, जिनका कि उस कानून से सम्बन्ध है या जिनको कि प्रत्यक्ष या व्यक्तिगत रूप से उसमें कोई खास दिलचस्पी है, उस कानून के विभिन्न पहलुओं पर, खण्डों पर और उसमें सन्निहित सिद्धान्तों पर समझदारी से दिलचस्पी लेते हैं और सभा के शेष सदस्य या उनमें से अधिकांश लोग प्राय:

उदासीन रहते हैं। पार्टी के ख्याल से हो या पारस्परिक निष्ठा के कारण से हो, सदस्यगण बनने वाले कानूनों के सम्बन्ध में जो अपना मतदान करते हैं वह अधिकतर इन्हीं बातों के प्रभाव में आकर करते हैं जिनका मैंने अभी-अभी उल्लेख किया है और न कि इस कारण से कि कानून को ठीक-ठीक समझ कर, उसके प्रभाव को समझ कर उन्होंने उसके सम्बन्ध में अपना निश्चय किया है।

इसलिए समुचित विधि-निर्माण के ख्याल से यह सर्वथा अनुपयुक्त है कि हम कानून बनाने के लिये अनभिज्ञों और अनाड़ियों का दल इकट्ठा करें जो संसद् के समक्ष प्रतिवर्ष उपस्थित होने वाले जटिल एवं गहन विषयों पर विधि बनाये और वह भी उन विषयों के पंडितों और माने हुए विशेषज्ञों से बिना कोई परामर्श लिये, बगैर उनके पथ-प्रदर्शन के। मैंने यहां अनाड़ी शब्द का प्रयोग किया है और जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधि संसद् के समक्ष आने वाले अधिकांश प्रश्नों के सम्बन्ध में विधि-निर्माण करने के लिये प्रायः अनाड़ी ही होंगे। इन प्रतिनिधियों को परामर्श देने के लिये एक ऐसी परिषद् होनी ही चाहिये जिसमें तटस्थ, निस्पृह एवं उदासीन व्यक्ति हों जो अपने अध्ययन, अनुभव एवं शिक्षा के आधार पर, इन मसलों पर परामर्श देने के लिये सर्वथा सक्षम हों, जिनका कोई अधिशासी और शासन सम्बन्धी प्रकार्य न हो, जो स्वयं विधान-मण्डल के सदस्य न हों पर जिनका संसद् के बाहर देश में इतना सम्मान हो कि विधान-मण्डल से वह ऐसे निश्चय करा सकें जिनसे देश का अधिकाधिक हित हो। बहुत से देशों में श्रीमान्, एक यह पद्धति चालू होती जा रही है कि संसद् सामाजिक महत्व के मूलभूत कानून तो पास कर देती है किन्तु उन कानूनों के अधीन; सम्बन्धित विभागों को उस सम्बन्ध में उप-विधि या नियम बनाने का अधिकार दे देती है। उन मूलभूत कानूनों के अधीन वहां की नौकरशाही को—यहां आपत्तिजनक अर्थ में, मैं इस शब्द का प्रयोग नहीं कर रहा हूं—आप यों कह सकते हैं कि वहां स्थायी सरकारी कर्मचारीवृन्द को, विस्तृत रूप से नियमादि बनाने का अधिकार रहता है। इन नियमों को संसद् खुद नहीं बनाती। इसमें शक नहीं कि कभी-कभी इस ख्याल से कि शायद सदस्यों को उनके सम्बन्ध में कोई आपत्ति हो और वे उसे व्यक्त करना चाहें, नियमों की प्रतियां सभासदों की मेजों पर अवश्य रख दी जाती हैं पर सच तो यह है कि शायद ही कभी सदस्य उनको पढ़ते हों और उनकी छानबीन करते हों। मूलभूत कानून के अधीन जब सम्बन्धित विभाग ऐसे नियमों को बनाते हैं तो वे नियम केवल इस आधार पर ही कानून का रूप ग्रहण कर लेते हैं कि उनको विभागस्थ कर्मचारियों ने बनाया है और संसद् के सदस्य उस पर आपस में परामर्श नहीं करते।

[प्रो. के.टी. शाह]

यह एक ऐसी पद्धति है, श्रीमान्, जिसके सम्बन्ध में विख्यात विधि-शास्त्र-वेत्ता, किंग्स बेंच डिवीजन के प्रधान न्यायाधीश लार्ड हैवेट ने यह कहा है कि यह एक तरह का नया निरंकुशतंत्र है। वस्तुतः यह पद्धति ऐसी है कि उससे सरकारी महकमों के स्थायी अफसरों को इतना अधिकार मिल जाता है कि उससे एक तरह से नागरिक स्वतंत्रताओं का होना न होना दोनों बराबर हो जाता है और नागरिकों की सामान्य स्वतन्त्रतायें तो जाती रहती हैं।

हम जिस स्वतंत्र लोकतन्त्र की योजना बना रहे हैं, उसके लिये मैं कहूंगा, श्रीमान् कि यह व्यवस्था कदापि हितकर नहीं हो सकती। इसलिये मेरा निवेदन यह है कि लोक-स्वातन्त्र्य के हित में समुचित विधान-निर्माण के हित में श्रेयस्कर यही है कि हम एक परामर्शदातृ-परिषद् बनायें, जिसमें निस्पृह एवं निस्वार्थ व्यक्ति हों, जिनको हम केवल अनुभव, शिक्षा एवं योग्यता के आधार पर ही चुनें और जिन पर हमारे मन्त्रियों की तरह अन्य कोई भार न हो, जिनके कार्यपालक या शासन सम्बन्धी प्रकार्य न हों। उनको हम इतना अच्छा पारिश्रमिक दें कि उन पर देश-हित के अतिरिक्त अन्य किसी बात का प्रभाव न पड़ सके और वे अपना समस्त समय उन खास-खास विषयों पर ही लगायें जिनके सम्बन्ध में कानून बनाने का प्रश्न संसद के समक्ष खड़ा हो। आशा है, सभा यह संशोधन स्वीकार करेगी।

***उपाध्यक्षः** अब संशोधन नं. 1380 लिया जाये, जो डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के नाम में है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 67 के खण्ड (2) के स्थान पर निम्नलिखित अंश रखा जाये":

'(2) इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) के अधीन प्रधान द्वारा मनोनीत किये जाने वाले सदस्यों में ऐसे व्यक्ति होंगे जिनको इन विषयों का, जिनका उल्लेख नीचे है, विशेष ज्ञान अथवा व्यावहारिक अनुभव है–

साहित्य, कला, विज्ञान और सामाजिक सेवायें।' "

***उपाध्यक्ष:** इस संशोधन पर कई संशोधन आये हैं और उनको मैं एक-एक करके लेता जाऊंगा। संशोधन नं. 13 जो श्री कामत के नाम में है।

(संशोधन पेश नहीं किया गया।)

अब संशोधन नं. 14 आता है जो श्री लोकनाथ मिश्र के नाम में है।

***श्री लोकनाथ मिश्र:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1380 में, अनुच्छेद 67 के लिये प्रस्तावित खण्ड (2) में, 'विशेषज्ञान अथवा व्यावहारिक अनुभव' शब्दों की जगह 'वास्तविक ज्ञान या उनके प्रति सक्रिय निष्ठा' शब्द तथा 'साहित्य, कला, विज्ञान और सामाजिक सेवायें' शब्दों की जगह 'प्राचीन भारतीय दर्शन और संस्कृति का इतिहास, कला, विज्ञान तथा ऐसी सामाजिक सेवायें जो अन्तर्मुखी भारत के पुनर्निर्माण के हेतु हों' शब्द रखे जायें।"

मैं माननीय डॉ. अम्बेडकर का धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने यह संशोधन उपस्थित किया और उसमें 'साहित्य, कला, विज्ञान तथा सामाजिक सेवायें' शब्दों को रखा। उनका यह संशोधन मूल अनुच्छेद से कहीं अच्छा है। वस्तुत: मेरी तुच्छ राय तो यह है कि राज्य-परिषद्, जैसा कि मैं इसे समझता हूं, हमारे अतीत के प्रतिनिधित्व करने वाला आगार होगी और लोक-सभा हमारे वर्तमान का प्रतिनिधित्व करेगी। और जहां तक हमारे भविष्य का सवाल है, वह तो विधाता के ही हाथ में है। मैं तो कहूंगा कि हम अपने देश में उस स्निग्धकर प्रभाव की सृष्टि जो आज अपेक्षित है तभी कर सकते हैं, जब कि हम अपने मन और विचारों का निर्माण अपने अतीत के आधार पर करें। अगर भारत को वास्तविक भारत होना है तो मैं कहूंगा कि उसे अपने महान् एवं गौरवशाली अतीत का सम्यक् ज्ञान होना चाहिये। अत: राज्य-परिषद् के लिये राष्ट्रपति द्वारा जो सदस्य मनोनीत किये जाये वह ऐसे ही व्यक्ति होने चाहियें जिन्हें हमारे अतीत का, हमारे इतिहास, दर्शन एवं संस्कृति का पूरा ज्ञान हो। इसीलिये मैं कह रहा हूं कि बजाय 'साहित्य' शब्द रखने के हमें 'इतिहास, दर्शन और संस्कृति' शब्द रखने चाहियें। हमारे सारे प्रयास एक ही दिशा में होने चाहियें और वह दिशा यही हो सकती है कि हमारा आदर्श यह होना चाहिये कि भारत अपने अतीत स्वरूप को, अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करे। राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये गये सदस्य इन्हीं चार विषयों का वहां प्रतिनिधित्व करेंगे। अपने सुझाव का औचित्य समझाने के लिये मुझे कोई लम्बा

[श्री लोकनाथ मिश्र]

भाषण देने की जरूरत नहीं है। इस सम्बन्ध में मैं 'भारत तथा पाश्चात्य जगत' नामक निबन्ध से चन्द पंक्तियां उद्धृत करूंगा जिसे कैप्टन एनथानी एम. लुडोवी (इंग्लैण्ड) ने लिखा है। आप लिखते हैं:

"मनुष्य-विज्ञान के वेता हमें विश्वासपूर्वक यह बतलाते हैं कि किसी भी जाति विशेष के अस्तित्व को समाप्त करने के लिये अक्सर हिंसा, व्याधि या उनमें यूरोपियनों द्वारा किसी बुरी आदत का फैलाया जाना ही अपेक्षित नहीं है। आप उस जाति पर नया विश्वास और रहन-सहन लाद दीजिये और इसके परिणामस्वरूप उसमें एक नैराश्य या मानसिक शैथिल्य उत्पन्न हो जायेगा जो उसके अस्तित्व को समाप्त कर देगा, क्योंकि ऐसा होने पर वह एक ऐसी मानसिक अवस्था में पड़ जाती है जो उसके उत्साह को, जीवन के आनन्द को और यहां तक कि अपने को बचाये रखने की इच्छा-शक्ति को ही निर्जीव कर देती है।"

"जब हम यह देखते हैं कि सभी जातियों में, यहां तक कि यूरोप की खानाबदोश जातियों में भी अपने जातीय संस्कृति एवं रीतिरिवाजों के प्रति बड़ा ही गहरा मोह होता है, तो हमें यह जान कर लेशमात्र भी आश्चर्य न होना चाहिये कि उन जातियों में, जिनमें कि परिवर्तन की तथा परिवर्तन सहन करने की क्षमता हमसे कुछ भिन्न है, एक नई और जबरदस्त संस्कृति के आ जाने का—जो कि बहुधा धर्म परिवर्तन के सहारे, बलपूर्वक या प्रलोभन द्वारा उन पर तेजी से लादी गई है—प्रभाव यह पड़ा है कि वह सर्वथा निर्जीव हो गई है, न उनमें कोई कामना रह गई है, न कोई आशा और विश्वास रह गया है।"

"यूरोपवासी इस स्थिति में था कि उन लोगों को, जो कि धर्म-परिवर्तन न करने पर अड़े हुये थे, धमकी के जरिये राजी कर लेता था, धर्म-प्रचार एवं व्यापार प्रसार करने वाले अपने दलालों के दुराग्रह के द्वारा उनको उत्तेजित करके उनसे शत्रुवत् आचरण कराता था और फिर उसके बहाने उनके विरुद्ध प्रायः करके फौजी कार्रवाई कर बैठता था। ऐसी दशा में अगर कुछ जातियां इस प्रबल आघात को सह कर भी अपना अस्तित्व बनाये रखने में, न केवल एक सुसंगठित समुदाय के रूप में बल्कि एक सजीव जाति के रूप में, अपनी परम्परागत रूढ़ियों का निर्वाह करते हुये अपने देवी-देवताओं की उपासना अपने रीत्यानुसार करते हुये अपना अस्तित्व कायम रखने में सफल रहीं तो यह कहना

होगा कि उन्होंने एक बहुत ही बड़ा कारनामा कर दिखाया, एक महान् चमत्कार कर दिखाया और इस चमत्कार को हम धर्म एवं निष्ठा का चमत्कार कहेंगे। अपनी संस्कृति पर डटे रहने की भावना, जाति को आश्चर्यजनक जीवन शक्ति प्रदान करती है जिससे ये चमत्कार सम्भव होते हैं।

"हम जानते हैं कि भारतवर्ष ने एक हद तक यह चमत्कार कर दिखाया। अपने अपेक्षाकृत विकास के कारण, अपने सांस्कृतिक जाटिल्य के कारण, अपनी महती जनसंख्या के कारण जो आक्रमणकारियों की तुलना में कहीं अधिक थी, सर्वोपरि अपने नेताओं के उच्चतम बौद्धिक स्तर के कारण तथा इस कारण कि उसके नेताओं में अपने देशवासियों के चिरपलित शारीरिक एवं मानसिक अभ्यासों को कायम रखने की एक दृढ़ भावना है, भारतवर्ष आगामी हजारों वर्षों तक दुनिया में एक सजीव राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित रहेगा, एक ऐसे राष्ट्र के रूप में....

***उपाध्यक्ष:** कितनी देर तक आप यह सब पढ़कर सुनाना चाहते हैं? मेरा ख्याल है कि जो संशोधन आपने रखा है, उससे इन बातों का कोई सम्बन्ध नहीं है।

***श्री लोकनाथ मिश्र:** अभी समाप्त किये देता हूं। हम क्या हैं इसकी प्रशंसा एक विदेशी ने की है और इसी दृष्टि से यह उद्धरण यहां प्रासंगिक है:

"एक ऐसे राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित रहेगा, जिसने ऐसी प्रबल शक्तियों के विरुद्ध जो अन्यत्र प्राय: सर्वत्र ही विजयी रही, शताब्दियों तक बल्कि यह कहना चाहिये कि अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति के अन्तिम दिन तक, अपने जीवन को, अपने आचार-विचार सदा बनाये रखने के लिए संघर्ष किया और बिना कोई असाध्य क्षति उठाये।"

मैं यह निवेदन करूंगा, श्रीमान्, कि अपने संविधान का मसौदा तैयार करते समय हम अपने अतीत की रक्षा करने का साहस नहीं कर सकते। राज्य-परिषद् का एक ऐसा आगार होना चाहिये जहां अतीत को अवश्य प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। और यह तभी हो सकता है, जब कि राष्ट्रपति ऐसे व्यक्तियों को मनोनीत करें जो हमारे उन अतीतकालीन मेधावी महापण्डितों का प्रतिनिधित्व करने के योग्य हों, जिनकी भावनायें सर्वथा उदात्त थीं, जिनका नैतिक स्तर बहुत ही ऊंचा था।

***उपाध्यक्ष:** अब आता है संशोधन नं. 15, जो मि. नजीरुद्दीन अहमद के नाम में है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1380 में अनुच्छेद 67 के लिये प्रस्तावित खण्ड (2) के अन्त में 'विज्ञान' शब्द के बाद 'दर्शन, धर्म एवं कानून' शब्द जोड़ दिये जायें।"

उपाध्यक्ष: क्यों न आप संशोधन नं. 17 को भी इसी समय पेश कर दें? वह भी तो आप ही के नाम में है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान्, कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1380 में, अनुच्छेद 67 के लिये प्रस्तावित खण्ड (2) के अन्त में 'साहित्य....' इत्यादि से प्रारम्भ होने वाले शब्दों को, उस खण्ड के उपखण्ड (क) के रूप में रखा जाये और उसके बाद निम्नलिखित नया उपखण्ड जोड़ दिया जाये:

'(ख) पत्रकारिता, वाणिज्य, उद्योग-धन्धा तथा कानून।'"

इस सम्बन्ध में मेरा यह निवेदन है, श्रीमान्, कि अनुच्छेद 67 के मूल खण्ड (2) में कई विषय रखे गये हैं जिनके विशेषज्ञों को राष्ट्रपति राज्य-परिषद् के लिये मनोनीत करेगा। वस्तुत: उस खण्ड में बहुत से विषय रखे गये हैं जिनके नाम ये हैं:

(क) साहित्य, कला, विज्ञान और शिक्षा।

(ख) कृषि, मत्स्यपालन और तत्सम्बद्ध विषय।

(ग) अभियंत्रणा (इंजीनियरिंग) और वास्तुशास्त्र।

(घ) लोक-प्रशासन और सामाजिक सेवायें।

इस लम्बी सूची में से केवल तीन विषय 'कला, विज्ञान और सामाजिक सेवायें' डॉ. अम्बेडकर के प्रस्तुत संशोधन में रखे गये हैं और "letters" को उन्होंने और जोड़ लिया है। मेरा यह कहना है, श्रीमान्, कि यदि राष्ट्रपति पर यह प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है कि मनोनीत करने में वह केवल इन्हीं चार विषयों

के विशेषज्ञों को लेगा और शेष विषयों की तरफ ध्यान न देगा, तो इसमें खतरा होगा। कोई कारण नहीं है कि मनोनीत करने के सम्बन्ध में राष्ट्रपति पर कोई पाबन्दी लगाई जाये और उसे व्यापक क्षेत्र न दिया जाये। अस्तु, मेरा पहला संशोधन जिसे कि मैं अभी पेश कर चुका हूं केवल इतना ही कहता है कि इसमें 'दर्शन, धर्म, एवं कानून' और जोड़ दिये जायें। इस सम्बन्ध में मेरा यह निवेदन है, श्रीमान्, कि जहां तक दर्शन शास्त्र का सम्बन्ध है, वह मूलतः एशियाई प्रदेश की चीज है। यही बात धर्म के सम्बन्ध में है। विश्व के सभी बड़े-बड़े दर्शन और धर्म एशिया में ही पैदा हुये और यहीं से उनका प्रसार हुआ। कोई कारण नहीं है कि हम क्यों अपने दार्शनिकों को तथा धर्म विषयक नेताओं को संसद् से बाहर रखें। अभी उस दिन की ही तो बात है कि श्री कामत के कहने पर हमने अपने संविधान में 'परमात्मा' शब्द को स्थान दिया है। वस्तुतः राष्ट्रपति जब पद ग्रहण की शपथ लेगा तो वह परमात्मा के नाम में ही शपथ लेगा। जब हमने परमात्मा को संविधान में रखा है तो धर्म को भी, जो परमात्मा के मानने के फलस्वरूप पैदा होता है, अपने संविधान में मान्यता देना हमारे लिये स्वाभाविक होना चाहिये। अक्सर यह कहा जाता है कि धर्म बहुत बुरी चीज है और इसके कारण झगड़े पैदा होते हैं। मेरा यह निवेदन है, श्रीमान्, कि धर्म कभी भी झगड़ों की सृष्टि नहीं करता। यह तो साम्प्रदायिकता है जो झगड़े पैदा करती है न कि धर्म। विश्व के सभी महान् धर्म बहुत ही अच्छे हैं और इनसे एक नैतिक आधार मिलता है, जिसके सहारे मानवता अपना काम कर सकती है। इसलिये हमें धर्म की उपेक्षा न करनी चाहिये और न दर्शन की ही। इस सभा के लिये तो दार्शनिक दृष्टिकोण विशेष रूप से आवश्यक है। ऐसे समय जबकि एक सदस्य यह पाता है कि उसके संशोधन पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता है और उसकी वक्तृता को मसौदा-समिति का प्रधान सुनता ही नहीं है तो उस बेचारे के लिये दार्शनिक होने के सिवाय क्या चारा रह जाता है? इसलिये परमात्मा के नाम पर मैं अनुरोध करता हूं कि धर्म को जरूर संविधान में रखिये, छोड़िये मत।

अब इसके बाद 'कानून' रखने की बात आती है। मैं कहूंगा, श्रीमान्, कि कानून-विशेषज्ञों का भी राज्य-परिषद् में जरूर प्रतिनिधान होना चाहिये। ऊपर वाले आगार में तो खास तौर पर कानून विशेषज्ञों की खासी संख्या रहनी चाहिये क्योंकि उस आगार में तो उन सभी प्रस्तावों पर पुनर्विचार किया जायेगा जो नीचे वाले आधार से पास होंगे। सुतरां वहां कानून विशेषज्ञ अवश्य ही रहने चाहियें। सर तेजबहादुर सप्रू, सर अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर जैसे कानून-विशारद....

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती:** सर बी.एन. राव।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** अवश्य ही, सर बी.एन. राव भी। मैं इस सुझाव के लिये माननीय मित्र का आभारी हूं। ये बहुत ही उपयोगी नाम हैं और राष्ट्रपति जब मनोनीत सदस्यों को चुनने लगें तो इन धुरन्धरों को भी चाहें तो वह मनोनीत कर लें, यह उसके वश की बात होनी चाहिये। हो सकता है कि किसी भावी चुनाव में खुद डॉ. अम्बेडकर को हम न चुन पायें। ऐसी हालत में यह उपाय रहना ही चाहिये कि राष्ट्रपति को मनोनीत करने का जो अधिकार है, उस व्यवस्था द्वारा हम इन्हें ले सकें। हां, इसके अतिरिक्त सर जयकर हैं। ये लोग कानून के धुरन्धर विद्वान हैं और इनका लिया जाना भी बड़ा ही लाभप्रद होगा। इसलिये मैं कहूंगा कि प्रधान मनोनीत व्यक्तियों को चुनते समय इन सब नामों पर भी विचार कर सकें, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये।

अब हम वाणिज्य के प्रतिनिधित्व की बात लेते हैं। हम अपने बड़े-बड़े व्यापारियों को भी लेना चाहते हैं जो देश में सम्पत्ति का वस्तुत: सृजन करते हैं। इनको भी प्रतिनिधित्व प्राप्त होना चाहिये। इनकी राय हमारे लिये बहुत ही सहायक होगी। यही बात हमारे उद्योगपतियों के सम्बन्ध में भी लागू है।

ये कई भिन्न वर्ग हैं जिनमें से राष्ट्रपति अपने मनोनीत व्यक्तियों को ले सकता है। राष्ट्रपति को इस सम्बन्ध में काफी व्यापक क्षेत्र मिलना चाहिये, जहां से वह राज्य-परिषद के लिये लोगों को मनोनीत कर सकें। इसलिये मैं कहूंगा कि सभा को यह संशोधन स्वीकार करना चाहिये।

पत्रकारिता, वाणिज्य, उद्योग-धन्धा और कानून—इनको यहां जोड़ने का जो मैंने सुझाव दिया है, वह मैंने कतिपय कानून विशारदों के एक सुझाव के आधार पर ही दिया है जिसे कि उन्होंने भारतीय विधान के मसौदे पर विचार करते हुये, कलकत्ता के 'इण्डियन ला रिव्यू' नामक जनरल में प्रकाशित लेख में दिया है। यह एक त्रिमासिक पत्रिका है। इसके दूसरे अंक के पृष्ठ 9 पर उक्त लेख छपा है। उस लेख में इसी अनुच्छेद के सम्बन्ध में विचार करते हुये उन्होंने सुझाव रखा है कि पत्रकारिता, वाणिज्य, उद्योग-धन्धा तथा कानून—इन चार पेशों के भी प्रतिनिधि राज्य-परिषद् में रहने चाहियें। उनका कहना है कि कोई कारण नहीं है कि क्यों इन चार महत्वपूर्ण पेशों को भी प्रतिनिधित्व न दिया जाये। सबसे महत्व की बात जो मैं सभा को सुझा रहा हूं, वह यही है। मनोनीत व्यक्तियों को लेने के लिये राष्ट्रपति को व्यापक क्षेत्र मिलना चाहिये और वह सीमित न होना

चाहिये। इस सूची में अगर हम भिन्न-भिन्न पेशों और व्यवसायों को रखते हैं ताकि उनमें राष्ट्रपति लोगों को मनोनीत कर सकें, तो यह लाभप्रद ही होगा।

***उपाध्यक्ष:** अब दूसरा संशोधन जो हमारी सूची में आता है, वह है सूची 1 का संशोधन नं. 16 जो श्री सिधवा के नाम में है।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): मैं अपना संशोधन नहीं पेश कर रहा हूं, श्रीमान्।

***उपाध्यक्ष:** अब दूसरा संशोधन है सूची 1 का नं. 18, जो श्री बी. दास के नाम में है।

चूंकि श्री बी. दास यहां उपस्थित नहीं हैं, हम इसे छोड़कर आगे बढ़ते हैं।

अब आता है संशोधन नं. 1381। मैं देखता हूं कि संशोधन नं. 1383, 1384 तथा 1385 से 1392, ये सब एक ही आशय के हैं। इसलिये इन सभी संशोधनों पर एक साथ विचार किया जा सकता है।

संशोधन नं. 1384 अब पेश किया जा सकता है, जो श्री प्रभुदयाल हिम्मत-सिंहका के नाम से है।

श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका (पश्चिमी बंगाल : जनरल): मैं अपना संशोधन नहीं पेश कर रहा हूं, श्रीमान।

(नं. 1381 से 1384 तक संशोधन पेश नहीं हुये।)

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं कि:

> "अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के स्थान पर निम्नलिखित अंश रखा जाये:
> '(3) राज्य-परिषद् के सभी सदस्य निर्वाचित होकर आयेंगे और प्रत्येक संविधायी राज्य वयस्क मताधिकार के आधार पर पांच सदस्य चुनेगा।' "

मैं यहां इसी आम सिद्धान्त का सदा पक्ष-प्रतिपादन करता रहा हूं कि विधान-मण्डल के सभी सदस्य ऐसे होंगे जिन्हें जनता ने अपना प्रतिनिधि चुन

[प्रोफेसर के.टी. शाह]

कर भेजा हो, भले ही चुनाव आप चाहे जिस पद्धति से करना तय करें। प्रस्तुत संशोधन को मैंने इसी सिद्धान्त के आधार पर रखा है।

दूसरी बात उस सम्बन्ध में यह है कि राज्य-परिषद् में, संघ के अंगभूत सभी राज्यों या इकाइयों को—आप चाहें जो नाम उसके लिये रख लें—समान प्रतिनिधित्व मिलना चाहिये। नीचे वाले आगार में यानी लोक-सभा में तो आप जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधि ले सकते हैं, पर ऊपर वाले आगार यानी राज्य-परिषद् के लिये जो प्रतिनिधित्व होगा, वह तो विशेषकर प्रादेशिक आधार पर ही होगा और सम्बन्धित प्रदेश के हित विशेषों की ओर से ही प्रतिनिधि लिये जायेंगे न कि केवल जनसंख्या के आधार पर।

और ये लोग भी अर्थात् जो लोग कि राज्य-परिषद् के लिये लिये जायें, वे भी निर्वाचन के द्वारा ही लिये जायें, न कि मनोनयन द्वारा या अतिरिक्त रूप से सदस्य लेकर या अन्य किसी पद्धति के जरिये उस आगार के सदस्य निर्वाचित होने चाहियें।

दूसरी बात यह कि राज्यों के जो प्रतिनिधि आयेंगे, वह सभी इकाइयों से समान संख्या में आयेंगे, यानी हर राज्य को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त रहेगा, ताकि हमारा लोकतन्त्र वास्तविक संघ के अर्थ में काम करता दिखाई दे और यह न हो कि राज्यों में कोई भेदभाव बरता गया हो। इन सभी बातों के आधार पर सभा से इस अपने संशोधन को स्वीकार करने की मैं सिफारिश करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 1396 केवल रस्मी है, इसलिये इसे उपस्थित करने की अनुमति नहीं दी जाती है।

(संशोधन नं. 1397 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 1398 का पहला हिस्सा तथा संशोधन नं. 1402 समान आशय के हैं। संशोधन नं. 1398 के प्रथम अंश को उपस्थित करने की अनुमति मैं दे सकता हूं।

***श्री मुहम्मद ताहिर** (बिहार : मुस्लिम): उसके दूसरे हिस्से के बारे में आप क्या कहते हैं?

***उपाध्यक्ष:** वह अपनी जगह पर लिया जायेगा।

***श्री मुहम्मद ताहिर:** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान्, कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) में जहां भी दूसरी बार शब्द आया है वह हटा दिया जाये।"

मैं यह संशोधन इसलिये रख रहा हूं कि मैं ऐसा समझता हूं कि राज्य-परिषद् के प्रतिनिधियों का जहां तक सम्बन्ध है, उनमें निर्वाचित एवं मनोनीत सदस्य के बीच कोई अन्तर नहीं रहना चाहिये। मनोनीत सदस्यों को भी आगार में ले लिये जाने पर वही अधिकार और सुविधायें प्राप्त हों जो कि उस आगार के सदस्यों को सदस्य होने के नाते प्राप्त हैं।

भारत के राष्ट्रपति के निर्वाचन के सम्बन्ध में भी मैंने इसी आशय का एक संशोधन रखा था, किन्तु उसके बारे में सभा ने यह तय किया कि केवल निर्वाचित सदस्य ही राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिये मत दे सकेंगे। वहां ऐसी व्यवस्था करने का तो कुछ कारण भी था, क्योंकि अगर कोई राष्ट्रपति संसद् के लिये सदस्य मनोनीत करने के बाद अगर राष्ट्रपति पद के लिये खुद उम्मीदवार खड़ा हो जाता है, तो मनोनीत सदस्यों को मतदान में अवश्य ही कुछ न कुछ कठिनाई—संकोच—होगी। किन्तु जहां तक कि राज्य-परिषद् के प्रतिनिधियों के निर्वाचन का प्रश्न है, मैं कोई कारण नहीं देखता कि विधान-मण्डल के मनोनीत सदस्यों को क्यों राज्य-परिषद् के लिये प्रतिनिधि-निर्वाचन में मतदान करने से रोका जाये। आशा है, सभा इन सभी बातों पर विचार करते हुये मेरे संशोधन को स्वीकार कर लेगी।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन के दूसरे हिस्से की अब आप पेश कर सकते हैं। उन पर अलग-अलग राय ली जायेगी। संशोधन नं. 1402 इसी आशय का है। क्या आप चाहते हैं कि उस पर भी राय ली जाये?

***श्री मुहम्मद ताहिर:** हां, जनाब।

***उपाध्यक्ष:** संशोधन नं. 1398 के दूसरे भाग को अब आप पेश कर सकते हैं।

***श्री मुहम्मद ताहिर:** मैं यह प्रस्ताव रखता हूं कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) में 'लेजिस्लेटिव असेम्बली' (Legislative Assembly) शब्दों की जगह 'लोअर हाउस' (Lower House) शब्द रखे जायें।"

[श्री मुहम्मद ताहिर]

इस सम्बन्ध में मैं चाहूंगा कि माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर खास तौर पर इस पर ध्यान दें। मैंने यह संशोधन इसलिये पेश किया है कि मसौदे के अनुच्छेद 148 में राज्यों के विधान-मण्डल को विधान-सभा (Legislative Assembly) या विधान-परिषद् (Legislative Council) कहा गया है और लोअर हाउस (Lower House) नाम नहीं दिया गया है जैसा कि अनुच्छेद 67 में सुझाया गया है। इस सम्बन्ध में मैं समझता हूं, माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर मुझ से भी ज्यादा सतर्क निकले क्योंकि जब हम अनुच्छेद 43 पर विचार कर रहे थे, उस समय उन्होंने उस अनुच्छेद में एक व्याख्या इस आशय की जोड़ दी थी: "इस तथा निकटवर्ती आगामी अनुच्छेद में 'राज्य के विधान-मण्डल' पदावली से, जहां विधान-मण्डल दोधारा हो, विधान-मण्डल का प्रथम सदन अभिप्रेत होगा।" जब हम अनुच्छेद 43 पर यहां विचार कर रहे थे, तो उन्हें यह व्याख्या जोड़नी पड़ी थी, और इसका मतलब यह हुआ कि यह व्याख्या केवल अनुच्छेद 43 तथा 44 के लिये ही है। इसलिये विचाराधीन अनुच्छेद में स्थिति को स्पष्ट करने के लिये मेरे संशोधन को स्वीकार करने के लिये मुझे और कोई उपाय नहीं दिखाई देता, श्रीमान्। या मैं डॉ. अम्बेडकर से यह अनुरोध करूंगा कि वे यहां भी एक व्याख्या जोड़ दें जैसा कि उन्होंने अनुच्छेद 43 में किया है, क्योंकि अगर ऐसा नहीं किया जाता है तो अनुच्छेद का मतलब साफ नहीं होगा। आशा है कि सभा संशोधन पर समुचित रूप से विचार करेगी और उसे स्वीकार करेगी।

महबूब अली बेग साहब बहादुर (मद्रास : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, आपकी अनुमति से मैं यह प्रस्ताव रखना चाहता हूं कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) में 'लोअर हाउस' (Lower House) शब्दों की जगह 'दोनों आगारों के' (the two Houses) शब्द रखे जायें।"

इस उपखण्ड का संशोधित रूप यह होगा:

"67 (3) (क) जहां राज्य के विधान-मण्डल के दो आगार हैं वहां दोनों आगारों के निर्वाचित सदस्यों द्वारा निर्वाचित होंगे।''

मुझे तो कोई कारण नहीं दिखाई देता श्रीमान्, कि जिन राज्यों में दोधारा विधान-मण्डल हैं, वहां अवर आगार के निर्वाचित सदस्यों को इस निर्वाचन में भाग लेने से क्यों रोका जाये। जो लोग मनोनीत होकर अवर आगार में आयेंगे,

मैं उनके ख्याल से यह संशोधन नहीं दे रहा हूं, बल्कि इसे मैं इस ख्याल से पेश कर रहा हूं कि अवर आगार के निर्वाचित सदस्यों को निर्वाचन में भाग लेने का अधिकार मिलन चाहिये। सैद्धान्तिक दृष्टि से कोई कारण नहीं है कि अवर आगार के निर्वाचित सदस्यों को निर्वाचन में भाग लेने से क्यों वंचित रखा जाय। यही कारण है, जिसके लिये मैं यह संशोधन रख रहा हूं।

मेरे नाम से एक संशोधन और है, जिसका नं. है 1407 । उसे भी पेश करने की मुझे अनुमति दी जाये, श्रीमान्।

उपाध्यक्षः इसी आशय के तीन संशोधन आये हैं। एक है नं. 1400, दूसरा नं. 1403 और अन्तिम है नं. 1407 । इनमें से नं. 1407 मुझे सर्वाधिक व्यापक प्रतीत होता है। श्री बेग अपना संशोधन पेश कर सकते हैं।

***महबूब अली बेग साहब बहादुरः** दूसरा संशोधन जो मेरे नाम से है, वह है नं. 1407, जिसे मैं पेश करता हूं। मेरा प्रस्ताव है किः

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) में निम्नलिखित नया उपखण्ड (घ) जोड़ा जाये :

'(घ) उपखण्ड (क) तथा (ख) के अधीन होने वाला चुनाव अनुपाती प्रतिनिधान की पद्धति के आधार पर एक संक्राम्य मत द्वारा किया जायेगा।' "

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्तः जनरल): मेरी एक नियम सम्बन्धी आपत्ति है, श्रीमान्। श्री बेग से पहले तो इसी आशय का मेरा संशोधन आता है, पर उसे पेश करने की मुझे तो अनुमति नहीं दी गयी।

***उपाध्यक्षः** बात यह है कि तीनों ही संशोधन यानी नं. 1400, 1403 तथा 1407 एक साथ पेश किये गये हैं, जैसा कि माननीय सदस्य को खुद मालूम हो जायेगा, अगर वह वितरित पत्रों को देखें। मेरी राय में इन तीनों में संशोधन नं. 1407 सर्वाधिक व्यापक दिखाई देता है। अस्तु, माननीय सदस्य को आगे चल कर अपना संशोधन पेश करने का मौका मिलेगा।

***महबूब अली बेग साहब बहादुरः** मुझे खुशी है कि यहां निर्वाचन-पद्धति के सम्बन्ध में कुछ सदस्यों की, और खास कर माननीय मित्र श्री महावीर त्यागी

[महबूब अली बेग साहब बहादुर]

की वही राय है जो मेरी है। मुझे इसकी भी खुशी है कि अब से विधान के इस हिस्से पर पहुंच कर त्यागी जी ने अपनी राय बदल दी है। जब संविधान के किसी पूर्व के भाग में राष्ट्रपति के निर्वाचन के सम्बन्ध में मैंने अपना संशेधन रखा था, तो मुझे खूब याद है, त्यागी जी ने बड़ी अनुदारता दिखाई थी।

***श्री महावीर त्यागी:** वहां राष्ट्रपति के निर्वाचन का प्रश्न या, पर यहां प्रश्न है राज्य-परिषद् के सदस्यों के निर्वाचन का।

***उपाध्यक्ष:** मेरा ख्याल है कि "बड़ी अनुदारता दिखाई थी" यह न कह कर आप यह कहें कि "बड़ी दृढ़ता से आपने राय दी थी" तो और अच्छा होगा।

***महबूब अली बेग साहब बहादुर:** शायद तब उन्होंने समझा नहीं था। पर अब आपकी समझ में यह आ रहा है कि अनुपाती प्रतिनिधान की पद्धति के आधार पर एकल संक्राम्य मत द्वारा निर्वाचन करना देश की दृढ़ता के लिये हानिप्रद नहीं है। मुझे याद है कि उस समय त्यागी जी ने कहा था.....

***उपाध्यक्ष:** माननीय सदस्य से मैं कहूंगा कि बजाय इसके कि वह इस सभा के एक-दूसरे सदस्य श्री महावीर त्यागी के अतीत कालीन प्रवृत्ति पर टीका-टिप्पणी करें, उन्हें अपने संशोधन पर ही बोलना चाहिये। ऐसा करने से सम्भवत: सभा का समय बचेगा।

***महबूब अली बेग साहब बहादुर:** अनुच्छेद 55 के द्वारा, जो कि राष्ट्रपति के निर्वाचन के बारे में है, एक निर्वाचन-पद्धति को सभा पहले ही स्वीकार कर चुकी है। अनुच्छेद 55 में यह कहा गया है:

> "संयुक्त अधिवेशन में एकत्रित संसद् के उभय आगारों के सदस्यों द्वारा अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के अनुसार एकल संक्राम्य मत द्वारा उप-राष्ट्रपति का निर्वाचन होगा और ऐसे निर्वाचन में मतदान गूढ़शलाका द्वारा होगा।"

अत: निर्वाचन के लिये जिस पद्धति का सुझाव मैं दे रहा हूं, वह कुछ नया नहीं है और न उसमें कोई असाधारण बात ही है।

हमारे संवैधानिक सलाहकार की ओर से सभा के सदस्यों को संविधान सम्बन्धी नजीरों की जो पुस्तिका दी गई है, उसमें कतिपय मान्य विद्वानों की जो संविधान सम्बन्धी बातों पर कुछ कहने का अधिकार रखते हैं, रायें दी हुई हैं। यदि आप की अनुमति हो, श्रीमान्, तो मैं कुछ रायों को पढ़ कर सुना दूं। अनुपाती प्रतिनिधान के सम्बन्ध में अधिकारी विद्वानों की सम्मतियां यह हैं:

"अल्पसंख्यकों के अधिकारों और हितों के संरक्षण के लिये सर्वोत्तम उपायों में एक उपाय यह है कि निर्वाचन, अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के अनुसार एकल संक्राम्य मत द्वारा किया जाये और यह पद्धति बहुत से देशों में अपनाई भी जा चुकी है। स्विट्जरलैण्ड देश इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

पहले तो धर्म सम्बन्धी तथा प्रादेशिक कई प्रबल मतभेद थे, किन्तु इधर एक लम्बे अरसे से अब सरकार में स्थिरता आ गई है। सरकार बनाने की जिम्मेदारी संसद् पर होती है। उसका पहला कर्तव्य यह है कि एक कार्यपालक मण्डल का निर्माण करे। स्विट्जरलैण्ड की पार्लामेण्ट का चुनाव अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति से ही होता है।"

स्वर्गीय पेनरिथ के लार्ड हवार्ड ने, जो बर्न, स्टाकहोल्म, मैड्रिड और वाशिंगटन में ब्रिटेन के प्रतिनिधि थे और जिन्होंने विभिन्न सरकारों की कार्य-प्रणाली का अध्ययन किया था, इस सम्बन्ध में यह लिखा है:

"लोकतंत्र की मूलभूत दो आवश्यकताएं यह हैं। एक तो यह है कि सरकार जनता की इच्छा की प्रतीक हो और दूसरी यह कि वह ऐसी होनी चाहिये कि सुचारु रूप से स्थिरतापूर्वक कार्य कर सके और वह बहुधा संकटग्रस्त ही न होती रहे। इन दोनों ही बातों का निर्वाह जितनी सफलतापूर्वक स्विट्जरलैण्ड की शासन-पद्धति में हुआ है, उतना संसार के किसी और देश में नहीं।"

एक दूसरे अधिकारी ने इस सम्बन्ध में यह कहा है:

"सर सैमुएल होर ने चेज़ला में अपने निर्वाचकों के समक्ष भाषण देते हुये यह मत व्यक्त किया था कि यूरोप में प्रतिनिधिमूलक सरकार और भी सन्तोषजनक रूप से कार्य कर सकती है, अगर ब्रिटिश प्रणाली के बजाय स्विट्जरलैण्ड की प्रणाली के आधार पर सरकार बनाई जाये। 'दी न्यूयार्क रिव्यू फ्री वर्ल्ड' ने इटली के भविष्य के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने के लिये गैर सरकारी तौर पर एक गोलमेज सभा

[महबूब अली बेग साहब बहादुर]

का आयोजन किया था, जिसमें कर्नल रैनडोल्फ पैकिआर्डी ने, जो वाम पक्ष के एक बड़े ही सक्रिय सदस्य थे, यह कहा था:

"लेटिन प्रदेशों के लोकतंत्रों पर प्राय: करके आने वाले संकटों को, जिनके कारण लोकतंत्रात्मक शासन-व्यवस्था को बड़ी ही बदनामी उठानी पड़ी है, दूर किया जा सकता है, अगर वहां वह शासन-व्यवस्था अपनाई जाये जो आज स्विट्जरलैण्ड में विकसित हो चुकी है।"

जून सन् 1945 में प्रोपोर्शनल रिप्रेजेंटेशन सोसायटी (The Proportional Representation Society) ने इस वक्तव्य को प्रचारित भी किया था।

इसलिये निर्वाचन की यह पद्धति जनता की इच्छा को प्रतिध्वनित करती है और इस व्यवस्था में स्थैर्य और दायित्व दोनों ही अधिक हैं। मेरा कहना तो यह है कि कुछ लोगों का जो यह भय है कि इस निर्वाचन-पद्धति से देश कई टुकड़ों में विभक्त हो जायेगा और उसकी अखण्डता जाती रहेगी, वह सर्वथा निराधार है। प्रतिनिधान की यह पद्धति सर्वथा समुचित है, किन्तु जो लोग साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के हैं उन्हें इस पद्धति के सम्बन्ध में जो कुछ भी कहा जाय, उसमें साम्प्रदायिकता की ही गंध मिलती है। लोकतंत्रात्मक शासन-व्यवस्था में, देशवासियों के प्रतिनिधान के लिये यही सर्वोत्तम युक्तिसंगत एवं लोकतंत्रीय पद्धति है। इसलिये सभा से मैं सिफारिश करूंगा कि वह मेरे दोनों संशोधनों को—पहला यह कि अवर आगार के निर्वाचित सदस्यों को निर्वाचन में भाग लेने का अधिकार होना चाहिये और दूसरा यह कि निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के अनुसार एकल संक्राम्य मत द्वारा होना चाहिये—अवश्य स्वीकार करें। इन शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन पेश करता हूं।

***उपाध्यक्ष:** अन्य दो संशोधन जो इस सम्बन्ध में आये हैं, वह है नं. 1400 तथा 1406 ।

***श्री महावीर त्यागी:** यह दोनों संशोधन मेरी ओर से आये हैं, श्रीमान्, और मैं यह निवेदन करूंगा कि इनको अलग-अलग पेश करने की अनुमति दी जाये, ताकि सभा इन प्रश्नों पर अलग-अलग निर्णय कर सके।

***उपाध्यक्ष:** कृपा करके माइक्रोफोन पर आइये।

***श्री महावीर त्यागी:** मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता हूं, श्रीमान्, कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) के अन्त में निम्नलिखित शब्द जोड़ दिये जायें:

'अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के अनुसार एकल संक्राम्य मत द्वारा' इस संशोधन को पेश करने में..."

***उपाध्यक्ष:** मेरा ख्याल है कि माननीय सदस्य को अपने संशोधनों को उपस्थित करने की अनुमति मैंने नहीं दी है। मैं कारण जानना चाहता हूं कि क्यों वह इन्हें पेश करना चाहते हैं। इनका आशय वही है, जो संशोधन नं. 1407 का है।

***श्री महावीर त्यागी:** यह बिल्कुल सही है। इन्हें पेश करने का कारण यह है कि मैं यह चाहता हूं एक बात के सम्बन्ध में सभा इस प्रश्न पर एक तरह से निर्णय करे और दूसरी बात के सम्बन्ध में दूसरी तरह। मैं चाहता हूं कि सभा को इस प्रश्न पर विचार करने का पूरा मौका दिया जाये।

उपाध्यक्ष: आम बहस के दौरान में तो माननीय सदस्य को अपनी बात कहने का मैं मौका दे सकता हूं, किन्तु जो प्रथा यहां काम में आ चुकी है, उसे मैं नहीं तोड़ सकता। उनके दोनों संशोधनों पर अलग-अलग राय ले ली जायेगी।

***श्री महावीर त्यागी:** क्या मैं अपनी बात अभी कह दूं, श्रीमान्?

***उपाध्यक्ष:** आम बहस के समय माननीय सदस्य को मैं जरूर इसका मौका दूंगा।

***उपाध्यक्ष:** अब आता है, संशोधन नं. 1401, जो श्री नजीरुद्दीन अहमद का है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव उपस्थित करता दूं कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) के अन्त में 'और' (and) शब्द जोड़ दिया जाये और उपखण्ड (ख) के अन्त में 'तथा' (and) शब्द को हटा दिया जाये।"

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

अपने संशोधन नं. 1404 को भी मैं आपकी अनुमति से उपस्थित करता हूं, श्रीमान् । वह यह है:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (ग) को हटा दिया जाये।"

जहां तक कि इस उपखण्ड का सम्बन्ध है, इसके कारण यहां कुछ असंगतता पैदा हो जाती है। खण्ड (3) का, जहां यह उपखण्ड आता है, सम्बन्ध है विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधान से। उपखण्ड (क) का सम्बन्ध है उन राज्यों के प्रतिनिधान से जहां कि विधान-मण्डल दोधारा है। उपखण्ड (ख) का सम्बन्ध है उन राज्यों के प्रतिनिधान से, जिनका विधान-मण्डल एक धारा है।

***उपाध्यक्ष:** मिस्टर नजीरुद्दीन अहमद, आप अपने संशोधन नं. 1404 को भी पेश कर सकते हैं।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** हां, श्रीमान्, मैंने भी अभी उसी संशोधन को ही पेश किया है।

***उपाध्यक्ष:** और केवल एक वक्तृता दीजिये।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** उपखण्ड (ग) का सम्बन्ध है उन राज्यों के प्रतिनिधान से जहां कोई विधान-मण्डल है ही नहीं। यहां 'राज्य' शब्द में प्रान्त, चीफ कमिश्नरों के प्रान्त और रियासतें भी शामिल हैं। जहां तक प्रान्तों का सम्बन्ध है, सभी में विधान-मण्डल हैं और भावी विधान के अनुसार भी वहां विधान-मण्डल रहेंगे। इसलिये उपखण्ड (ग) से अगर किन्हीं राज्यों पर असर पड़ता है, तो वह हैं वह राज्य जो आज रियासतों के नाम से ज्ञात हैं तथा चीफ कमिश्नर वाले प्रान्तों के नाम से ज्ञात हैं। जिन राज्यों में विधान-मण्डल नहीं है वहां के लिये प्रतिनिधि निर्वाचन की पद्धति को निश्चित करने की शक्ति संसद् को दी जा रही है। इस सम्बन्ध में मेरा कहना यह है कि इस व्यवस्था से उन राज्यों के और खास कर रियासतों के अधिकार पर अतिक्रमण होता है। जिन राज्यों में विधान-मण्डल नहीं है, उनका अपना एक अलग व्यक्तित्व है, उनको एक अलग तरह की सार्वभौमिकता या प्रभुता प्राप्त है। अभी उस दिन डॉ. अम्बेडकर ने यह स्वीकार किया था कि इन्हें भी एक तरह के सार्वभौमिकताधिकार प्राप्त है, यद्यपि पूर्ण रूप से ये सार्वभौम अधिकार नहीं हैं। केवल इस बात के आधार पर कि इन राज्यों में विधान-मण्डल नहीं है, इनके प्रतिनिधि निर्वाचन की व्यवस्था को निश्चित करने का काम आप संसद् पर छोड़ दें इसका कोई कारण

नहीं है। अगर फिलहाल उनमें कोई विधान-मण्डल नहीं है तो इससे क्या होता है? आखिर आगे चल कर इनमें कोई न कोई प्रधान या राजप्रमुख अथवा अन्य कोई प्राधिकारी होगा ही जो वहां कार्य करेगा। अगर उस राज्य का सारा कार्य-संचालन—उसके शासन को, उसके अधिशासी और न्याय सम्बन्धी सभी कामों को वह प्राधिकारी चला सकता है तो उसी प्राधिकारी को यह व्यवस्था भी निश्चित करनी चाहिये कि उस राज्य में प्रतिनिधि राज्य-परिषद् के लिये किस तरह चुने जायें। इसलिये यह उपखण्ड यहां संगत नहीं होता है। हां, यह सम्भव है कि संसद् को कभी इस सम्बन्ध में व्यवस्था निश्चित करनी पड़े, पर यह उसी समय हो सकता है जब कि राज्य की शासन-व्यवस्था में कोई व्यवधान, वास्तविक सांवैधानिक व्यवधान पैदा हो जाये। और आप जिस व्यवधान की कल्पना कर रहे हैं वह यह है कि वहां विधान-मण्डल का कोई आगार न हो। आखिर उस राज्य में एक सुसंगठित सरकार तो होगी ही, भले ही, वहां कोई विधान-मण्डल न हो। तो फिर, इस बात का निश्चय करना कि राज्य-परिषद् के लिये उसके प्रतिनिधि कैसे लिये जायें, वस्तुतः उस सरकार का ही काम होना चाहिये। वस्तुतः यह विषय सम्बन्ध रखता है कि समाविष्टि सम्बन्धी शर्तों से (Terms of Accession)। वस्तुस्थिति यह है कि कोई राज्य जिसमें विधान-मण्डल नहीं है, अगर वह भारतीय संघ में किन्हीं शर्तों पर समाविष्ट होता है, तो उस सूरत में तो इस उपखण्ड (ग) को लागू करने के लिये यह जरूरी है कि यह उपखण्ड समाविष्टि की शर्तों के अनुसार हो। किन्तु जहां तक मैं देख पाता हूं, समाविष्टि की शर्तों में यह बात नहीं दी हुई है, जो इस उपखण्ड में रखी गई है और यह उपखण्ड (ग) उससे एक अलग चीज है। इस उपखण्ड द्वारा तो इन राज्यों के सार्वभौम या अर्ध-सार्वभौम सत्ता पर अतिक्रमण होता है। इसलिये मेरा कहना यह है कि इनके प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में कोई व्यवस्था निश्चित करने का अधिकार संसद् को न होना चाहिये। यह संसद् की शक्ति के परे की बात है। अपने प्रतिनिधान सम्बन्धी व्यवस्था को निश्चित करने का काम तो इन राज्यों पर ही छोड़ना चाहिये। वस्तुतः यह अधिकार उनको होना चाहिये कि वे खुद इस सम्बन्ध में निश्चय करें। हां, यह जरूर है कि वहां विधान-मण्डल को होना एक वांछनीय बात है, पर यह नहीं है कि सांवैधानिक दृष्टि से विधान-मण्डल का होना लाजिमी ही हो। आखिर इस बात के आधार पर कि वहां विधान-मण्डल नहीं है, आप उन राज्यों को इस अधिकार से वंचित नहीं कर सकते कि वे अपने प्रतिनिधि भेजने के लिये किसी व्यवस्था का निश्चय खुद वहीं कर सकते हैं।

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

ऐसी हालत में मैं यही कहूंगा कि उपखण्ड (ग) को हटा देना चाहिये। किन्तु इसके साथ ही मैं यह भी महसूस करता हूं कि इसके स्थान पर कोई न कोई एक ऐसा प्रावधान होना चाहिये, जिसमें विधान-मण्डल-शून्य राज्यों के इस अधिकार को स्वीकार किया गया हो कि प्रतिनिधि भेजने के सम्बन्ध में जो भी व्यवस्था हो वह तय करना चाहे खुद कर सकते हैं। मेरे पास समय बहुत कम रह गया है, अतः इस सम्बन्ध में अपनी ओर से मैं कोई वैकल्पिक योजना तो उपस्थित नहीं कर सकता हूं, किन्तु इतना जरूर कहूंगा कि यह एक सैद्धान्तिक प्रश्न है। और अगर इस सभा को यह सिद्धान्त स्वीकार हो तो इस उपखण्ड की जगह कोई और समुचित प्रावधान आसानी से पेश किया जा सकता है। किन्तु आपने जो इस उपखण्ड में प्रावधान किया है, उसके बारे में मैं यह जरूर कहूंगा कि राज्यों में जो भी शासन-व्यवस्था हो, चाहे वह सरकार के रूप में काम करती हो या अन्य किसी रूप में काम करती हो, उसकी जगह अगर आप संसद् को देते हैं, तो यह व्यवस्था न तो कानूनन और न सांवैधानिक दृष्टि से ही सही है।

इन शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन रखना हूं और सभा से उसे स्वीकार करने का अनुरोध करता हूं।

(संशोधन नं. 1405 पेश नहीं किया गया)।

***उपाध्यक्षः** संशोधन नं. 1406 को, केवल शाब्दिक होने के कारण पेश करने की अनुमति दी जाती है।

(संशोधन नं. 1409 पेश नहीं किया गया)।

नं. 1410 को उपस्थित करने की अनुमति नहीं दी जाती है।

आम बहस शुरू होने के पहले सभा के सामने एक सुझाव रखना चाहता हूं। जाप्ते के कई नियमों को मैंने यहां तोड़ दिया है। कुछ को तो जानकारी के अभाव में और कइयों को जानबूझ कर। अब मैं जानबूझ कर यहां की एक स्थायी परम्परा को तोड़ देना चाहता हूं, किन्तु इसके लिये मैं सभा की अनुमति चाहता हूं। इस अनुच्छेद को दो भागों में बांटा जा सकता है। इसके प्रथम चार खण्डों का सम्बन्ध है, राज्य-परिषद् सम्बन्धी प्रतिनिधान से और अन्त के कुछ प्रावधानों का सम्बन्ध है लोक-सभा के प्रतिनिधान से। मेरा सुझाव यह है कि हम पहले इसके प्रथम भाग को अर्थात् पहले के चार खण्डों पर विचार करें, जिनमें

राज्य-परिषद् के प्रतिनिधान का जिक्र है। इन खण्डों से सम्बन्ध रखने वाले सभी संशोधन एक-एक करके पेश हो चुके हैं। अब मैं माननीय सदस्यों को इन चार खण्डों पर विचार करने का मौका देता हूं। उसके बाद मैं डॉ. अम्बेडकर को बुलाना चाहता हूं कि उत्तर में उन्हें जो कुछ कहना हो, कहें। उसके बाद मैं इन संशोधनों पर मत लूंगा। इतना हो जाने पर हम खण्ड (5) से सम्बन्ध रखने वाले संशोधनों को लेंगे। वे संशोधन भी पेश किये जायेंगे और इनके सम्बन्ध में भी वही जाप्ता बरता जायेगा। किन्तु यह जाप्ता केवल इसी खण्ड के लिये हैं। क्या सभा मुझे इसकी अनुमति देती है?

***माननीय सदस्यगण:** हां।

***उपाध्यक्ष:** अब इन चार खण्डों पर आप आम बहस कर सकते हैं। श्री रोहिणीकुमार चौधरी को अब मैं बुलाता हूं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में चन्द शब्द मैं कहना चाहता हूं। मेरे माननीय मित्र श्री मुहम्मद ताहिर ने एक संशोधन पेश किया है, जिसमें उन्होंने 'लोअर हाउस' (Lower House) शब्द का प्रयोग पर यहां आपत्ति की है। वास्तविक बात तो यह है, जैसा कि सभी जानते हैं कि अवर आगार (Lower House) ही वस्तुत: ऊपर वाला आगार होता है। वस्तुत: प्रान्त के शासन में, अवर आगार की ही बात सुनी जाती है और उसी का ज्यादातर हाथ रहता है। इसी तरह हाउस ऑफ कामन्स में साधारण जनता के प्रतिनिधि होते हैं और हाउस ऑफ लाड्र्स में विशिष्ट वर्ग के प्रतिनिधि होते हैं। किन्तु हाउस ऑफ लाड्र्स से ज्यादा शक्ति हाउस ऑफ कामन्स के हाथ में होती है, पर केवल इसके लिये यह कोई नहीं कहता कि हाउस ऑफ कामन्स का नाम बदल दिया जाय। इसके अलावा 'लोअर हाउस' शब्द रखने से यह स्वत: प्रकट होता है कि उस प्रान्त में उत्तर आगार यानी अपर हाउस भी है। अब जहां तक कि उत्तर आगार की बात है, इसके सदस्य बहुत से विशेषाधिकारों से वंचित होते हैं। उदाहरण के लिये मैं आप को बताऊं कि उम्मीद तो यह की जानी चाहिये थी कि राज्य-परिषद् के सदस्यों के चुनाव में उनके भाईबन्दों को यानी ऊपर वाले आगार के सदस्यों को अपना मत देने का मौका जरूर मिलेगा, क्योंकि आखिर ये दोनों ही एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं और इनमें—प्रान्त के उत्तर आगार और केन्द्र के राज्य-परिषद् के सदस्यों में—परस्पर सहानुभूति का होना स्वाभाविक है। किन्तु जब उन्हें वह विशेषाधिकार नहीं दे रहे हैं जिनका प्रयोग लोअर हाउस या असेम्बली के सदस्य

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

करते हैं, तो उनको तसल्ली देने के लिये उत्तर आगार के सदस्य के नाम से उन्हें पुकारा जाने दीजिये। इस दृष्टि से भी "लोअर हाउस" शब्दों को जहां वह आये हैं रहने देना चाहिये क्योंकि पहली बात तो यह है "लोअर हाउस" का मतलब यह नहीं है कि उस आगार के सदस्यों का रुतबा कुछ नीचा है बल्कि यह तो केवल जरूरत के ख्याल से रखा गया है। दूसरी बात यह है, श्रीमान्, कि जब तक हमारा यह विचार है कि प्रान्त में एक दूसरा आगार होना ही चाहिये तो फिर उस हालत में एक उत्तर आगार होना ही चाहिये क्योंकि जब हम उसे बहुत से विशेषाधिकार नहीं देने जा रहे हैं तो कम से कम सौजन्य के ख्याल से उसे उत्तर आगार यानी अपर हाउस के नाम से तो हमें पुकारना ही चाहिये।

इसके बाद अब मैं प्रो. शाह के संशोधन के सम्बन्ध में चन्द शब्द कहूंगा। अवश्य ही लोकतन्त्र की दृष्टि से हम यही आशा कर सकते हैं कि किसी भी आगार के सदस्य हों उन्हें निर्वाचित होकर ही आना चाहिये पर निर्वाचन द्वारा उन्हें लाने में कुछ कठिनाई है। अगर राज्य-परिषद् के लिये प्रतिनिधियों को केवल निर्वाचन के ही द्वारा लेंगे तो मनोनयन द्वारा जिस श्रेणी के व्यक्तियों को आप राज्य-परिषद् में लाना चाहते हैं उन्हें आप नहीं पा सकेंगे क्योंकि हम चाहते हैं ऐसे व्यक्तियों को जिन्हें कृषि, मत्स्य पालन, शासन तथा सामाजिक सेवाओं का विशिष्ट ज्ञान हो। ऐसे लोग चुनाव से सदा दूर भागते हैं और चुनाव के द्वारा सभा में आ नहीं सकते। इसलिये, इस परिस्थिति में हमें एक न एक ऐसा प्रावधान रखना ही चाहिये जिसके द्वारा हम मनोनयन के जरिये विषय विशेष की खास जानकारी रखने वाले ऐसे व्यक्तियों से लाभ उठा सकें जो चुनाव के संघर्ष में जाना पसन्द न करते हों पर जिनकी सेवायें विधान-मण्डल के लिये बहुत ही अपेक्षित हों।

इन शब्दों के साथ अनुच्छेद के प्रथम भाग का मैं समर्थन करता हूं।

***श्री आर.के. सिधवा:** उपाध्यक्ष महोदय, जहां तक कि राज्य-परिषद् से इस अनुच्छेद का सम्बन्ध है, इसके दो हिस्से किये जा सकते हैं। एक हिस्सा तो खण्ड (1) (क) का जिसमें संशोधन करके मनोनीत सदस्यों की संख्या को मूल संख्या 15 से घटा कर 12 कर दिया है। दूसरा हिस्सा है खण्ड (2) जिसमें मसौदा समिति ने 14 विषय रखे हैं जिनके विशेषज्ञों को मनोनीत किया जायेगा पर अब डॉ. अम्बेडकर ने एक संशोधन के द्वारा 4 विषयों के विशेषज्ञों में से ही मनोनीत करने की बात कही है। अनुच्छेद का यह खण्ड बड़ा ही विवादपूर्ण

है और सभा को उसकी ओर पूर्ण ध्यान देना चाहिये और इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये। इस खण्ड में चुनाव तथा मनोनयन—दोनों ही–बातें रखी गई हैं। मैं तो अपनी सारी जिन्दगी में इसी बात के पक्ष में रहा हूं कि विधान–मण्डल में तथा सार्वजनिक संस्थाओं और स्थानीय निकायों में चुनाव द्वारा ही सदस्यों को लेना चाहिये।

यह बात नहीं है कि मैं यह नहीं समझ रहा हूं कि हालत अब बदल गई है। किन्तु मैं ऐसा महसूस करता हूं कि इस बदली हालत में भी, राष्ट्रपति को जो शक्तियां दी गई हैं—यहां मेरा अभिप्राय मनोनयन सम्बन्धी अधिकार से है–उनका दुरुपयोग हो सकता है। यह एक ऐसी बात है जिसमें हम राष्ट्रपति के कार्यों पर कोई प्रश्न नहीं उठा सकते क्योंकि इस सम्बन्ध में उसे पूरा अधिकार है कि वह अपने विवेक के अनुसार जैसा चाहे करे। हो सकता है कि 'क' मनोनयन द्वारा लिये जाने के सर्वथा उपयुक्त हो पर राष्ट्रपति 'ख' को ज्यादा ठीक समझता हो और उसी को मनोनीत करे। उस सूरत में सभा या कोई भी व्यक्ति राष्ट्रपति की पसन्दगी पर कोई प्रश्न नहीं उठा सकता। यह तो कोई नहीं कह सकता कि राष्ट्रपति पर प्राभियोग चलाया जाये क्योंकि उसने खराब नीयत से फलां काम किया है। ऐसी कोई बात उसके खिलाफ तो कही नहीं जा सकती। मुझे डर है, श्रीमान्, कि अगर योग्य व्यक्तियों को छोड़ दिया गया और उनकी जगह राष्ट्रपति ने अपने कृपापात्रों को या अपने इर्द–गिर्द रहने वाले व्यक्तियों को मनोनीत कर लिया तो उससे बड़ा कलह पैदा होगा। आखिर मानव स्वभाव तो मानव–स्वभाव है और उसके लिये यह सब सम्भव है। मैं कोई नई बात नहीं कर रहा हूं क्योंकि ऐसे व्यक्ति आपको विरले ही मिलेंगे जो उन बातों से ऊपर हो। मनोनीत करने के लिये जब व्यक्तियों के चुनने में राष्ट्रपति को बहुत सी बातों का ख्याल करना पड़ेगा और हो सकता है कि योग्यता, सेवा त्याग आदि गुणें का वह ख्याल न करे अथवा उनकी अपेक्षा कर जाये। इसलिये मैं ऐसा महसूस करता हूं कि मनोनयन सम्बन्धी व्यवस्था को हमें यहां रखना ही नहीं चाहिये क्योंकि इससे कलह पैदा होगा और उस कलह के फलस्वरूप कलह बढ़ता ही जायेगा। मसौदा समिति ने पहले मनोनयन के लिये 14 विषय रखे थे पर उसके सभापति डॉ. अम्बेडकर ने अब यह संशोधन रखा है कि केवल चार ही विषयों के विशेषज्ञों में से मनोनीत व्यक्ति लिये जायें। खुद इससे ही स्पष्ट है कि इस सम्बन्ध में कितना मतान्तर है। इसके अलावा इस अनुच्छेद में अनेकानेक संशोधन आये हैं और इस बात से भी यह जाहिर हो जाता है कि इस व्यवस्था के सम्बन्ध में यहां लोगों के विचारों में कितना अन्तर है। एक विचारधारा तो

[श्री आर. के. सिधवा]

यह है कि केवल चन्द विषयों के लिये ही, जैसे कि कानून वगैरह जो बहुत ही शिथिल है, मनोनयन द्वारा विशेषज्ञों को रखा जायेगा। इस सम्बन्ध में यहां पूछा गया था कि आखिर 'स्वास्थ्य' को आप क्यों महत्व दे रहे हैं? मैं 'ला' (कानून) को विशेष महत्व नहीं देता हूं, श्रीमान्। इस सभा में ही कितने ही कानून विशेषज्ञ हैं और अगर अनुमति हो तो मैं तो कहूंगा कि इतने में ही कितने ऐसे हैं जो डॉ. अम्बेडकर के समान ही अपने विषय में दक्ष हैं। कहने का मतलब यह है कि इस व्यवस्था के रखने से लोगों के मन में प्रलोभन आयेगा और इन आये हुए अनेक संशोधनों से यह स्पष्ट है कि लोगों के मन में अभी से इस सम्बन्ध में प्रलोभन उठने लगा है। इसलिये मैं तो यही महसूस करता हूं, श्रीमान्, कि मनोनयन सम्बन्धी व्यवस्था हमें अभी हटा देनी चाहिये।

अब मैं प्रो. के.टी. शाह के संशोधन पर आता हूं। उन्होंने परामर्शदातृ-समिति रखने का जो सुझाव दिया है मैं उसका पूर्णत: समर्थन करता हूं। उनके विचारों से मेरा पूरा मेल तो नहीं खाता है। मसलन उन्होंने कई विषयों के विशेषज्ञों को रखने की बात कही है, उनकी अलग संख्या बताई है, जैसे कि कृषि के लिये 25 आदमी रखने को कहा है। इन सब विस्तार की बातों से मेरा मतैक्य नहीं है। कई विषयों के विशेषज्ञों को मनोनयन द्वारा लिया जाये, मैं इस विचार से सहमत नहीं हूं। किन्तु यह मैं जरूर महसूस करता हूं कि विशेषज्ञों की एक परामर्शदातृ-समिति का होना वांछनीय है। उदाहरण के लिये मैं आपको बताऊं कि नागरिक एवं सामाजिक जीवन के विशेषज्ञों की हमें जरूरत हो सकती है। हम अपने ग्रामों में तथा स्थानीय निकायों में नागरिक सेवा की उपेक्षा नहीं कर सकते। पर मैं यह नहीं समझता कि ऐसी समिति के लिये संविधान में कोई प्रावधान रखना आवश्यक है। अगर मनोनयन का प्रावधान रहता है तो उसके लिये परामर्शदातृ-समितियों को हम रख सकते हैं पर केवल दो या तीन ही चुने हुए विषयों के लिये। पर यह काम तो संसद् ही एक कानून पास करके कर सकती हैं। संविधान परामर्शदातृ-समिति का प्रावधान करके इन लोगों को अनावश्यक महत्व आप क्यों दें? चुनाव के समय जो स्थिति वर्तमान होगी उसके अनुसार संसद् खुद निश्चय कर सकती है। खास खास वजारतों के साथ कुछ विशेषज्ञ लगा दिये जायें। पर पहले विधान-मण्डल को ही इस बात को मौका दीजिए कि वह अपने में से कुछ ऐसे सदस्यों को पाले जो खास खास विषयों के विशेषज्ञ हों। यदि ऐसे सदस्य उन्हें अपने में न मिल सकें तो संसद् परामर्शदातृ-समिति नियुक्त करने

के लिये कानून पास कर सकती है। आपको अच्छी तरह मालूम है, श्रीमान्, कि आज देश की जो आर्थिक दशा है उसको देखते हुए अर्थशास्त्र विशेषज्ञों के परामर्श की हमें जरूरत हैं और हम उनका परामर्श पाना चाहते हैं। किन्तु बाहरी लोगों को लेकर ऐसी समिति बनाना वांछनीय नहीं हो सकता अगर हमें पूर्णतः तटस्थ एवं निष्पक्ष परामर्श लेना है। पर हां अगर ऐसे लोग राज्य की सेवा में हों, जैसा कि सुझाया गया है तो उनसे आप यह विश्वास रख सकते हैं कि वे तटस्थ राय देंगे।

जो भी मैं इस बात को स्पष्ट कर देना चाहूंगा कि मनोनयन के मैं सर्वथा विरुद्ध हूं और जो सुझाव मैंने अभी दिया है वह तो केवल इस ख्याल से दिया है कि अगर आप मनोनयन की व्यवस्था को रखना ही चाहते हैं तो इस रूप में रखिये। हम यह नहीं मान सकते कि चूंकि हम इतने निर्वाचित सदस्य वहां रहेंगे कि मनोनयन की व्यवस्था से कुछ नुकसान नहीं होगा। जैसा कि मैं कह चुका हूं हर आदमी से आप उज्ज्वल और निर्मल चरित्र की आशा नहीं कर सकते, गो कि हम सब चाहते यही हैं कि हमारा चरित्र बड़ा धवल हो और हम जिस व्यक्ति को भी चुनें उसे पक्षपात अथवा अन्य किसी ख्याल से न चुनें, बल्कि उस जगह के लिये जो वस्तुतः सर्वोत्तम व्यक्ति हो उसी को चुनें।

अपनी ओर से इतना सुझाव रखते हुए मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***उपाध्यक्षः** श्री महावीर त्यागी।

***श्री महावीर त्यागीः** मैं आपको धन्यवाद देता हूं, श्रीमान्, कि इस अनुच्छेद पर अपने विचार व्यक्त करने का आपने मुझे मौका दिया। इसके सम्बन्ध में मैं एक संशोधन पेश करना चाहता था पर आपने यह निर्णय दे दिया कि एक दूसरे संशोधन में मेरी बात आ चुकी है।

***उपाध्यक्षः** हां, आपके संशोधन नं. 1400 और 1408 दोनों ही की बातें पहले के संशोधनों में आ चुकी हैं।

***श्री महावीर त्यागीः** हां, श्रीमान्। मेरा संशोधन यह था कि अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) के अन्त में "अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के अनुसार एकल संक्राम्य मत द्वारा" शब्द जोड़ दिये जायें और इसी आशय का सुधार उपखण्ड (ख) में कर दिया जाये। अस्तु अब मुझे विशेष कुछ कहना नहीं है। मेरे माननीय मित्र मि. महबूब अली बेग ने एक संशोधन पेश कर दिया है

[श्री महावीर त्यागी]

जिससे मेरा ख्याल है कि मेरे संशोधन का मतलब पूरा हो जायेगा। किन्तु मेरा ख्याल है कि जो शब्द उन्होंने सुझाये हैं वे खण्ड में रखे गये शब्दों के साथ ठीक नहीं बैठते और मैं समझता हूं कि डॉ. अम्बेडकर को उन्हें वहां बिठाने में समूचे वाक्य को इधर उधर कर उसे ठीक करने की तकलीफ उठानी पड़ेगी। मिस्टर बेग का संशोधन है कि एक नया उपखण्ड (घ) जोड़ दिया जाये। उपखण्ड (क), (ख) और (ग) सब के सब एक बड़े के वाक्य से अंश हैं जो कि इस तरह प्रारम्भ होता है:

"प्रथम अनुसूची के भाग 1 अथवा 3 में उस समय उल्लिखित रहे प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधि वगैरह वगैरह.....।

और इसके बाद आते हैं उपखण्ड (क), (ख) और (ग)। इसके अन्त में अगर मिस्टर बेग का उपखण्ड (घ) रखा जाता है तो उसका रूप यह होगा:

"(घ) प्रथम अनुसूची के...के प्रत्येक प्रतिनिधि का चुनाव अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के अनुसार...होगा।"

यह वाक्य विन्यास तो कुछ ऐसा हो जायेगा जिसमें वाक्य ही बेतुका हो जायेगा। मेरा तो ख्याल है कि मैंने जो संशोधन सुझाया था वह बहुत आसान है और उसके रहने से ऐसी कोई गड़बड़ी नहीं पैदा होती जैसा कि मिस्टर बेग के संशोधन के आने से होती है। आशा है सभा मेरे सुझाव पर ध्यान देगी क्योंकि अगर मेरा संशोधन स्वीकार होता है तो डॉ. अम्बेडकर को इस अनुच्छेद के वाक्य विन्यास को बदलने की दिक्कत न उठानी पड़ेगी।

राज्य-परिषद् में जो प्रतिनिधि आयेंगे वह राज्यों की ओर से आयेंगे जो लोग कि वहां आम चुनाव में बहुमत द्वारा लिये जायेंगे। इसका मतलब यह हुआ कि राज्यों की ओर से जो प्रतिनिधि आयेंगे उनमें वहां के अल्पसंख्यक दल के कोई सदस्य न रहेंगे। इसका परिणाम तो यह होगा कि अगर राज्यों का चुनाव एकल संक्राम्य मत द्वारा न हुआ तो वहां के अल्पसंख्यकों को राज्य-परिषद् में कोई प्रतिनिधान मिलेगा ही नहीं। आज यूरोप में जिस किस्म का लोकतंत्र प्रचलित है, श्रीमान्, मैं उस से राजी नहीं हूं। यह तो एक भयानक छल कपट है जिसे विश्व के राजनीतिज्ञ अपनी जनता के प्रति अनजाने में प्रयोग में ला रहे हैं। चुनाव की जो पद्धति आज प्रचलित है उसमें जनता को कोई वास्तविक प्रतिनिधित्व मिल ही नहीं पाता है। पार्टी की बुनियाद पर बने सभी लोकतंत्रों में केवल चंद चुने

हुए लोगों का ही आधिपत्य रहता है जो कि शिक्षित और बुद्धिसम्पन्न वर्ग के होते हैं। ये लोग दल बना लेते हैं और दल के आधार पर ही चुनाव लड़ते हैं। ऐसी स्थिति में चुनाव में जगहें उन्हीं लोगों को मिलती हैं जो जनता की भावना में चढ़े रहते हैं। राजनीतिज्ञ लोग चुनाव के समय जनता की भावुकता को, उसकी भावनाओं को उत्तेजना प्रदान करते हैं। यह काम इस मात्रा तक होता है कि जब मतदाता चुनाव के समय अपना वोट देने जाता है तो वह उन भावनाओं से ओत-प्रोत रहता है जिनको चुनाव के सिलसिले में प्रचार द्वारा उत्तेजित किया जाता है। वह आप में नहीं रहता और भावना के प्रवाह में अपना व्यक्तित्व भी भूल बैठता है। जनता की मनोवृत्ति का हाल ही कुछ विचित्र है। जब भावना के आवेश में आकर कोई मतदाता अपना वोट देता है तो उस समय वह अपने विवेक का प्रयोग नहीं करता। चुनाव सम्बन्धी प्रचार के प्रवाह में वह उस समय बहता रहता है। ऐसी अवस्था में बहुमत वाले दल के भी जो लोग चुने जाते हैं उनके सम्बन्ध में हम यह नहीं कह सकते कि जनता की स्थिर बुद्धि का वह प्रतिनिधान करते हैं। यह तो अल्पसंख्यक दल हारे हुए या विजयी सदस्य ही हैं जो कुछ हद तक जनता की वास्तविक भावना का प्रतिनिधान करते हैं। हम तो दल के ऐसे लोगों को ही एक मात्र साहसिक समझते हैं जो बहुसंख्यक दल के आक्रमणों का, आघातों का सदा निर्भीकतापूर्वक सामना करते हुए अपनी जगह डटे रहें, जिन्होंने चुनाव सम्बन्धी प्रचार द्वारा उत्पन्न भावावेश में भी अपने को सदा शान्त रखते हुए बुद्धि संतुलन को बनाये रखा और जो अपने सिद्धान्त से जरा भी डिगे नहीं। इसलिये मैं तो यही कहूंगा कि जो लोग अल्पसंख्यक वर्ग के हैं हमें उनका सदा ध्यान रखना चाहिये और उस निगाह से देखना चाहिये कि जिस निगाह से हम दृढ़ सिद्धान्त वाले व्यक्ति को देखते हैं। पाश्चात्य देशों में जो लोकतन्त्र आज प्रचलित है वह महज एक धोखा है, छल है किन्तु फिर भी जो आज तक वह जीवित रह पाया है वह वहां के विपक्षी दल के अस्तित्व के कारण ही। जनता की वास्तविक आवाज को तो विपक्षी दल ही प्रकट करता है। विपक्षी दल के कारण ही लोकतंत्र की यह प्रणाली कायम है। अगर विपक्षी दल न होता तो यह लोकतंत्रीय परम्परा न जाने कब टूट गई होती। मैं लोकतंत्र में...

***उपाध्यक्षः** माननीय सदस्य का समय समाप्त हो चुका है।

***श्री महावीर त्यागीः** कृपया मुझे एक मिनट का समय और दीजिये। मैं विश्वास दिलाता हूं, श्रीमान्, कि कुछ लाभप्रद सुझाव सभा के सामने रखूंगा।

***उपाध्यक्ष:** किन्तु माननीय सदस्य को मालूम होना चाहिये कि अन्य सदस्यों को जो बोलने का लोकतंत्रीय अधिकार प्राप्त है उसे वह छीन रहे हैं।

***श्री महावीर त्यागी:** महात्मा गांधी के अनुसार राम राज्य है वास्तविक लोकतंत्र है जिसमें हर व्यक्ति अपने को तथा अपनी शक्ति और अपनी सभी सामग्रियों को जनमत की इच्छा पर समर्पित कर देता है। वस्तुत: राम राज्य की जो व्यवस्था है उसमें हर आदमी राज्य का अविभाज्य अंग बन जाता है। यद्यपि उस व्यवस्था में एक व्यक्ति समस्त जनता की सामूहिक इच्छा के अनुसार कार्य करता है पर उस हालत में भी वह अपने ही विवेक के आदेशानुसार ही चलता है और अपनी स्वतन्त्रता को बनाये रखता है। ऐसी लोकतंत्रीय व्यवस्था में तो यह होता है कि एक व्यक्ति पर किया गया आघात समस्त जन समुदाय पर आघात समझा जाता है और समस्त जन समुदाय पर किया गया आघात हर व्यक्ति पर आघात माना जाता है। पर हमने तो पाश्चात्य ढंग का लोकतंत्र अपना रखा है। अत: हमारे देश की राजनैतिक व्यवस्था में दलों का होना आवश्यक है। इसलिये राज्य-परिषद् में कुछ स्थान हमें विपक्षी विचारधारा के लोगों को भी देने चाहियें। इन लोगों को आप चुनाव के जरिये तभी पा सकते हैं जबकि मेरे संशोधन स्वीकार किये जायें। उनके स्वीकार होने पर ही आप विपक्षी वर्ग के सदस्यों को राज्य-परिषद् में स्थान न दे सकेंगे। विपक्षी दल के सदस्यों के रहने से आपको यह लाभ होगा कि जब भी हम राज्य से सम्बन्ध रखने वाली किसी महती नीति पर विचार-विमर्श करेंगे तो उनके विचारों से भी अवगत होने का हमें मौका मिल सकेगा। पाश्चात्य ढंग का लोकतंत्र तो इसी बुनियाद पर कायम है कि विपक्षी दल को वहां स्वच्छन्द रूप से काम करने की पूरी सहूलियत दी जाती है। बिना एक अच्छे विपक्षी दल के हुए लोकतन्त्र तो लंगड़ा हो जायेगा और गिर पड़ेगा। इन शब्दों के साथ, मैं अपनी बात समाप्त करता हूं और आशा करता हूं सभा मेरे संशोधन को स्वीकार करेगी।

***श्री मुहम्मद इस्माइल साहब** (मद्रास : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं केवल चन्द शब्द कहना चाहता हूं और एक या दो मिनट से ज्यादा समय नहीं लूंगा।

अनुच्छेद 67 के खण्ड (2) में उन विभिन्न श्रेणियों का नामोल्लेख किया गया है जिनमें से राष्ट्रपति मनोनीत व्यक्तियों को ले सकेगा। इसमें व्यवसाय, वाणिज्य तथा उद्योग धन्धों को नहीं रखा गया है और मसौदा समिति ने उसका कारण यह बताया है कि चूंकि अब वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव होगा

इन श्रेणियों के लोग आम चुनाव के जरिये भी आ सकते हैं। इस कारण के आधार पर तो, श्रीमान्, उन श्रेणियों के लोगों का भी बाद दिया जा सकता है जिनका उल्लेख उपखण्ड (क) और (घ) में किया गया है। वयस्क मताधिकार के आधार पर होने वाले आम निर्वाचन में ये लोग भी आ सकते हैं।

मैं नहीं समझता, श्रीमान्, कि जिन श्रेणियों का नामोल्लेख इस खण्ड में किया गया है उनके महत्व से वाणिज्य कुछ कम महत्व रखता है। अत: मेरी समझ से यह सर्वथा उचित है कि व्यवसाय और वाणिज्य को भी उसमें स्थान दिया जाये।

खण्ड (3) के विभिन्न उपखण्डों में यह कहा गया है कि राज्यों की ओर से राज्य-परिषद् के लिये जो प्रतिनिधि चुने जायेंगे उनके निर्वाचन में मनोनीत सदस्यों की कोई आवाज न रहेगी। मनोनीत सदस्यों को रखने की बात ही उठा दीजिये मझे उस पर कोई आपत्ति न होगी। किन्तु जब आप मनोनयन को आवश्यक समझते हैं और कुछ श्रेणियों से मनोनीत सदस्यों को लेने का प्रावधान कर रहे हैं, उनको मनोनीतकरण की व्यवस्था द्वारा राज्य-परिषद् में ले रहे हैं तो फिर उनके साथ यह भेदभाव बरतना ठीक न होगा। उनको एक असुविधा की स्थिति में रखना और चुने हुए सदस्यों से नीचा स्थान देना कदापि उचित न होगा। जब आपने मनोनयन सम्बन्धी व्यवस्था का महत्व स्वीकार कर लिया है तो फिर मनोनीत सदस्यों को भी वही स्थान दीजिये जो निर्वाचित सदस्यों को आप उस निकाय में देते हैं। इसलिये मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि मनोनीत सदस्यों को प्रतिनिधि-निर्वाचन में भाग लेने से क्यों वंचित किया जाये।

अब, श्रीमान्, मैं अनुपाती प्रतिनिधान की प्रणाली के सम्बन्ध में चन्द शब्द कहूंगा जिसको लेकर इस अनुच्छेद में एकाधिक संशोधन पेश किये गये हैं। इस प्रणाली के विरुद्ध यह कहा जाता है कि इससे लोगों में विभेद और अनैक्य पैदा होगा। किन्तु वास्तविकता यह है कि उसके परिणामस्वरूप पार्थक्य की भावना तो कभी उत्पन्न ही नहीं हो सकती क्योंकि हर वर्ग को यह बात अच्छी तरह मालूम है कि इस प्रणाली के आधार पर होने वाले निर्वाचन में हर वर्ग के लोगों की राय का गहरा असर पड़ेगा इसलिये हर वर्ग एक दूसरे से मिलने की कोशिश करेगा। निर्वाचन का प्रश्न उपस्थित होने पर सभी वर्ग आपस में मिल कर काम करने लगेंगे। बाध्य हो कर उन्हें हर वर्ग की राय पाने की कोशिश करनी पड़ेगी। इसलिये इस प्रणाली के आधार पर अगर निर्वाचन होता है तो लोग एक दूसरे के निकट आयेंगे न कि एक दूसरे से अलग होंगे। इससे लोगों में एकता पैदा

[श्री मुहम्मद इस्माइल साहब]

होगी न कि अनैक्य। आशा है मसौदा समिति के सभापति इस प्रणाली का जो प्रस्ताव रखा गया है उसके औचित्य का ख्याल करेंगे और सभा से, उसे स्वीकार करने की सिफारिश करेंगे।

उपाध्यक्षः डॉ. अम्बेडकर!

(पं. हृदयनाथ कुंजरू बोलने के लिये खड़े हुये।)

***उपाध्यक्षः** आप क्या कहना चाहते हैं, पण्डित कुंजरू?

***पण्डित हृदयनाथ कुंजरूः** अनुपाती प्रतिनिधान की पद्धति के सम्बन्ध में मैं कुछ बातें कहना चाहता हूं और मैं चाहता हूं कि डॉ. अम्बेडकर जवाब देने के लिये खड़े हों उसके पहले ही मैं अपनी बात कह दूं।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारतीः** आम बहस के सिलसिले में इस प्रश्न पर अब तक केवल दो ही वक्ता बोले हैं, श्रीमान्।

***उपाध्यक्षः** चार वक्ता इस पर बोल चुके हैं। किन्तु मैं आपको बोलने की अनुमति देता हूं, पं. कुंजरू। कृपया अपनी बातें अनुपाती प्रतिनिधान-पद्धति तक ही सीमित रखेंगे।

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** उपाध्यक्ष महोदय, अब जब प्रावधान रखा जा रहा है कि राज्य-परिषद् के सदस्यों को प्रान्तीय विधान-सभाओं के निचले आगार चुनेंगे तो यह आवश्यक हो जाता है कि उनके चुनाव के लिये एक पद्धति भी तय कर दी जाय जो विभिन्न दृष्टिकोणों के लोगों के लिये उचित हो। इसी ख्याल से यह सुझाव दिया गया है कि इनका चुनाव अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के आधार पर एकल संक्राम्य मत द्वारा किया जाये। माननीय सदस्यों को सम्भवतः यह आशंका हो कि इस पद्धति को स्वीकार कर लेने का परिणाम यह होगा कि प्रकारान्तर से यहां साम्प्रदायिक निर्वाचन चल पड़ेगा। फिरकेदाराना चुनाव की बुराइयों से हम सभी अच्छी तरह परिचित हैं। हम जानते हैं कि उसी साम्प्रदायिक चुनाव के फलस्वरूप ही हमारा देश दो भागों में आज बंट गया है। इसलिये हमें सतत सावधान रहना पड़ेगा कि ऐसी निर्वाचन पद्धति यहां न चलने पावे जो हमारी पिछली खराबियों को कायम रहने दे। अतः आइये हम इस बात पर विचार करें कि जो सुझाव यहां रखा गया है उसको स्वीकार करने का अमली नतीजा क्या होगा कि राज्य-परिषद् के सदस्यों का चुनाव विभिन्न सम्प्रदायों के

लोगों द्वारा होगा। स्थिति को साफ-साफ समझने के लिये यह जरूरी है कि पहले हम इस बात पर विचार कर लें कि प्रान्तीय-विधान सभाओं के सदस्य चुने किस तरह जायेंगे। वे लोग साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति के अनुसार तो चुने नहीं जायेंगे। उनका चुनाव मिले जुले तौर पर होगा और उनके निर्वाचकों में सभी सम्प्रदाय के लोग रहेंगे। इस प्रकार संयुक्त निर्वाचकों द्वारा जो लोग चुन कर आयेंगे उनमें साम्प्रदायिक मनोवृत्ति होगी, यह तो सम्भव नहीं है। हमें यह नहीं मान लेना चाहिये कि कोई भी व्यक्ति केवल अपने सम्प्रदाय के मत के बल पर चुन लिया जायेगा। उनको यह कोशिश करनी ही होगी कि निर्वाचकों में सभी वर्गों के लोगों के वोट उन्हें प्राप्त हो सकें। अगर उन्हें अपनी स्थिति कायम रखनी है और फिर चुनाव में आना है तो उनको एक ऐसी नीति पर चलना होगा जो सम्प्रदाय या धर्म के आधार पर न तय की गई हो। इसलिये अगर प्रांतीय विधान सभाओं में निचले आगारों में इस तरह के सदस्य आते हैं तो क्या आपका यह भय सर्वथा निराधार नहीं है कि अगर राज्य-परिषद् के सदस्यों का चुनाव अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के आधार पर एकल संक्राम्य मत द्वारा किया गया तो इससे साम्प्रदायिक निर्वाचन की बुराई कायम रह जायेगी या और भी उग्र रूप धारण कर लेगी? हमें इस प्रश्न पर विभिन्न सम्प्रदायों के प्रतिनिधान के ख्याल से ही नहीं विचार करना चाहिये। हमें इस सम्बन्ध में इस पर भी और विचार करना चाहिये कि हमें ऐसे व्यक्तियों को लेने की जरूरत है जो अप्रिय विचारधारा के लोग हैं और ऐसे लोगों को लेने के लिये अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के आधार पर एकल संक्राम्य मत द्वारा चुनाव करना ही एक ऐसा मार्ग है जिससे आप अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों को ले सकेंगे जो बहुसंख्य दल की विचारधारा से भिन्न विचार रखते हैं। जब तक अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति पर चुनाव नहीं होता, अप्रिय और विरोधी विचारधारा रखने वाले लोगों के प्रतिनिधि आ ही नहीं सकते। उदाहरण के लिये आप इस विधान-परिषद् के सदस्यों को ही लीजिये। यहां कुछ ऐसे सदस्य भी हैं जिनका कांग्रेस से सम्बन्ध नहीं है पर वह चुन कर आए हैं। अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के आधार पर एकल संक्राम्य मत द्वारा चुनाव होने के कारण ही वह संविधान परिषद् में आ सके। अगर यह पद्धति न बरती गई होती तो कोई भी गैर-कांग्रेसी यहां न आ पाता।

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): खूब, खूब।

***पण्डित हृदयनाथ कुंजरू:** इसलिये मेरा ख्याल तो यही है कि हमें राज्य-परिषद् के चुनाव के सम्बन्ध में अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के आधार पर

[पंडित हृदयनाथ कुंजरू]

एकल संक्राम्य मत द्वारा निर्वाचन की जो प्रणाली है उसे जरूर अपनाना चाहिये। मुझे इस बात को दुहराने की जरूरत नहीं है कि राज्य-परिषद् के सदस्यों का चुनाव प्रान्तीय विधान-मण्डलों के प्रतिनिधि करेंगे जो साम्प्रदायिक निर्वाचन के जरिये चुनाव में न आये रहेंगे। उन लोगों का निर्वाचन तो एक ऐसा निर्वाचक मण्डल करेगा जिसमें बहुसंख्यक वर्ग के लोगों का ही प्राधान्य होगा। इसलिये हमारा यह भय सर्वथा निराधार है कि अगर राज्य-परिषद् के प्रतिनिधियों का चुनाव अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति पर एकल संक्राम्य मत द्वारा किया जाता है तो इसका मतलब यह होगा कि हम साम्प्रदायिक निर्वाचन की प्रथा कायम करने जा रहे हैं और जिसकी सारी बुराइयां हमें भुगतनी पड़ेंगी। इसके प्रतिकूल मेरा ख्याल तो यह है कि आज की परिवर्तित दशा में इस पद्धति के रखने के विरोधी विचारधारा को समुचित प्रतिनिधान प्राप्त हो सकेगा और अगर यह पद्धति नहीं रखी जाती है तो ये लोग कभी आ ही नहीं सकेंगे और इनकी आवाज बेसुनी ही रह जायेगी।

***उपाध्यक्षः** डॉ. अम्बेडकर

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** उपाध्यक्ष महोदय, संशोधन नं. 1369, 1375, 1378, 1380, 1400 और 1403 को मानने के लिये मैं तैयार हूं। इनमें अन्त के जो दो संशोधन हैं (नं. 1400 तथा 1403) वह मि. महबूब अली बेग द्वारा उपस्थित किये संशोधन में आ चुके हैं। मि. महबूब अली बेग के जिस संशोधन का जिक्र कर रहा हूं वह है नं. 1407। मैं तो खुशी से इस संशोधन को स्वीकार कर लेता पर दुर्भाग्यवश उस संशोधन की इबारत, अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) में प्रयुक्त भाषा की व्यापकता के अनुरूप नहीं है। मैंने इस संशोधन को गौर से पढ़ा है और उसे स्वीकार करने में यही कठिनाई है। केवल इसी कारण से मैं संशोधन नं. 1403 को पसन्द कर रहा हूं कि उसकी भाषा, अनुच्छेद में प्रयुक्त भाषा के साथ ठीक बैठ जाती है।

जहां तक अन्य संशोधनों का सम्बन्ध है, मेरी समझ से केवल तीन ही संशोधन ऐसे हैं जिन पर गौर करना जरूरी है। एक संशोधन तो है श्री कुन्ही रमन का जिसका उद्देश्य यह है...

***उपाध्यक्षः** यह संशोधन पेश नहीं हुआ है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** तो फिर इसके सम्बन्ध में मुझे कुछ भी कहने की जरूरत नहीं है। अब बाकी बचे दो, जिनमें एक है पं. हृदयनाथ

कुंजरू का। राज्यों के प्रतिनिधियों की 40 प्रतिशत प्रतिनिधान देने का जो परन्तुक मसौदे में था उसके सम्बन्ध में पं. कुंजरू बहुत ही विचलित हैं और यह स्वाभाविक ही है। मेरी समझ से यह वांछनीय है कि स्थिति को मैं स्पष्ट कर दूं और वह बता दूं कि 40 प्रतिशत वाला परन्तुक रखने का उस समय कारण क्या था और अब स्थिति क्या है। यह बिल्कुल सही है कि गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया एक्ट में, निचले आगार में राज्यों को एक तिहाई प्रतिनिधान दिया गया था जो कि उनकी आबादी, तत्कालीन जनगणना के अनुसार एक चौथाई थी और राज्य-परिषद् में उनको 2/5 के हिसाब से प्रतिनिधान दिया गया था जो 40 प्रतिशत होता था। किन्तु मसौदे में इस परन्तुक को रखने की बुनियाद यह नहीं है। इसलिये मैं चाहता हूं कि कुछ विस्तारपूर्वक इस खण्ड का इतिहास मैं बता दूं।

इस सभा के सदस्यों को यह याद होगा कि यूनियन पावर्स कमेटी नाम की एक कमेटी इस सभा ने नियुक्त की थी। उस कमेटी ने ब्रिटिश भारत तथा रियासतों को प्रतिनिधान देने के सम्बन्ध में एक आम नियम की सिफारिश की थी। वह नियम यह था। पचास लाख की आबादी तक प्रत्येक दस लाख पर एक जगह दी जाये और अतिरिक्त प्रत्येक बीस लाख की आबादी पर एक जगह दी जाये। जैसा कि मैंने बताया है कि यह नियम प्रान्तों तक रियासतों दोनों पर समान रूप से लागू होने को था। किन्तु जब यूनियन पावर्स कमेटी की रिपोर्ट संविधान परिषद् के समक्ष विचारार्थ पेश हुई तो यह देखा गया कि राज्यों के प्रतिनिधियों ने इस कमेटी की रिपोर्ट के इस हिस्से के सम्बन्ध में बहुत से संशोधन दे रखे थे। प्रान्तों और रियासतों के प्रतिनिधियों के बीच इस मसले की बाबत काफी बातचीत चली और उसके फलस्वरूप मेरे आदरणीय मित्र एवं साथी श्री गोपाल स्वामी आयंगर ने, जिन्होंने यूनियन पावर्स कमेटी को स्वीकार करने का प्रस्ताव रखा था, यह संशोधन पेश किया कि राज्यों को 40 प्रतिशत से अधिक प्रतिनिधान न दिया जायेगा। माननीय सदस्यगण, इस सभा की, 31 जुलाई सन् 1947 की, कार्यवाही की रिपोर्ट देखें तो उन्हें उनका यह संशोधन मिलेगा। यही कारण था कि हमें मसौदे में यह बात रखनी पड़ी थी। जहां तक कि मैंने उस दिन की कार्यवाही को पढ़ा है, मेरा यही विश्वास है कि 40 प्रतिशत स्थान देने का जो परन्तुक रखा गया है वह उनको वजन देने के ख्याल से नहीं रखा गया है बल्कि इसलिये कि रियासतों की तादाद इतनी ज्यादा थी कि संघ में शामिल होने की इच्छा रखने वाली हर रियासत को प्रतिनिधान देना सम्भव ही नहीं होता अगर रियासतों के जगहों की तादाद काफी न बढ़ा दी जाती। रियासतों को संघ में

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

शामिल करने के उद्देश्य से ही यह परन्तुक रखा गया था। किन्तु अब हम यह देखते हैं कि स्थिति सर्वथा बदल गई है, कुछ रियासतों ने आपस में मिलकर अपना एक संघ बना लिया है, कुछ रियासतें प्रान्तों में मिल गई हैं और कुछ ही रियासतें ऐसी रह गई हैं जो एक इकाई के रूप में हैं। इन सब परिवर्तनों के कारण राज्यों के प्रतिनिधान को बढ़ाना अब कुछ वैसा जरूरी नहीं है जैसा कि शुरू में था क्योंकि जो रियासतें प्रान्तों में मिल गई हैं उनको अलग प्रतिनिधान देने की अब जरूरत नहीं रह गई है। उनका प्रतिनिधान प्रान्तों की मार्फत होगा। इसी तरह जो रियासतें आपस में मिलकर जो संघ बेद्ध हो गई हैं उनको अब अलग-अलग प्रतिनिधान देने की जरूरत नहीं रह गई है। अलग-अलग रियासतों को जो प्रतिनिधान पहले दिया जाता वही अब संघभूत इकाइयों को प्राप्त होगा। सुतरां, जो संशोधन मैंने रखा है और जिसमें अनुसूची 3(क) का उल्लेख है—दुर्भाग्यवश यह अनुसूची इस समय सदस्यों के सामने नहीं है और वह उस समय पेश की जायेगी जब हम उन सूचियों पर विचार करने लगेंगे—उसके द्वारा हम जो कुछ करना चाहते हैं वह यह है।

रियासतों को प्रतिनिधान के सम्बन्ध में 40 प्रतिशत जो अनुपात दिया गया है वह हटा दिया जायेगा और ऊपर वाले आगार में प्रान्तों तथा रियासतों—दोनों को ही समान प्रतिनिधान दिया जायेगा। इस सम्बन्ध में मैं आंकड़े भी पेश कर सकता हूं जो उस समय शायद बिल्कुल रत्ती रत्ती सही न हों पर इनसे आप को अनुसूची 3(क) में क्या हो सकता है, इसका एक खाका मिल जायेगा।

अनुसूची 3(क) के अनुसार प्रान्तों को 141 जगहें मिलेंगी। चीफ कमिश्नर वाले प्रान्तों को 2 जगहें मिलेंगी और रियासतों को कुल 70 जगहें मिलेंगी। इस तरह ऊपर वाले आगार में कुल निर्वाचित सदस्य होंगे 213 । इसमें 12 मनोनीत प्रतिनिधियों की जगहें जोड़ लीजिये तो कुल जगहें हुईं 225 । संशोधित खण्ड में यह कहा गया है राज्य-परिषद की कुल सदस्य संख्या होगी 250 । इस तरह आप देखेंगे कि अनुसूची 3(क) के अनुसार जगहों का जो वितरण होगा उससे दो बातें पूरी हो जाती हैं। एक तो यह कि इससे वजन देने का सवाल जाता रहता है और दूसरे यह कि कुल सदस्य संख्या उस अधिकतम संख्या के भीतर ही रह जाती है जो अपने प्रस्तावित संशोधन द्वारा मैंने उसके लिये निर्धारित की है। मेरा ख्याल है कि सभा उस स्थिति को सर्वथा सन्तोषजनक पायेंगे।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** क्या माननीय मित्र से मैं यह पूछ सकता हूं कि क्या प्रथम अनुसूची के भाग 3 की रियासतों को उनकी आबादी के अनुसार प्रतिनिधान दिया गया है?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** अवश्य, हर एक को उसकी जनसंख्या के अुनपात से प्रतिनिधान मिलेगा।

अब मैं लेता हूं दूसरे संशोधन को जिसका नं. है 1377 और जिसे पेश किया है प्रो. के.टी. शाह ने। प्रो. शाह का प्रस्ताव यह है, कृषि, उद्योग धन्धा, वाणिज्य तथा अन्य हितों के प्रतिनिधियों की एक परिषद् बनाई जाये और संविधान में उसके निर्माण का प्रावधान किया जाये। यह एक स्थायी निकाय होगा। राज्य को उसे वेतन भत्ता बगैरह देना होगा। और इसका संविधानत: कर्तव्य यह होगा—जैसा कि प्रो. शाह ने अपने संशोधन में दिया है—कि सरकार को परामर्श दे और सरकार का संविधानत: यह कर्तव्य होगा कि उसका परामर्श प्राप्त करे और गवर्नमेण्ट को यह अधिकार न होगा—मैं यही समझता हूं—कि वह ऐसे किसी भी बिल को पास करा सके जब तक कि उस पर यह सनद मौजूद न हो कि सरकार ने उसके सम्बन्ध में परामर्शदातृ-परिषद् से परामर्श ले लिया है। मेरा ख्याल है कि प्रो. शाह के संशोधन का यही उद्देश्य है।

इस पर कई आपत्तियां की जा सकती हैं। पहली बात तो यह है कि कोई भी व्यक्ति जो भारत सरकार या प्रान्तीय सरकारों में किसी भी महकमे का मंत्रित्व कर चुका है वह अच्छी तरह जानता है कि भारत सरकार हो या प्रान्तीय सरकार हो किसी भी बिल को कानून का रूप देने के पहले साधारणत: समुचित परामर्श अवश्य प्राप्त कर लिया करती हैं। भारत सरकार कभी ऐसा कोई प्रस्ताव ही नहीं रखती जिस पर संगठित रूप में उसने समुचित जनमत पहले ही प्राप्त न कर लिया हो। अत: जो प्रावधान प्रो. शाह ने उपस्थित किया है वह आमतौर पर बरता ही जाता है अत: उसे संविधान में स्थान देने की तो कोई जरूरत नहीं है। इस दृष्टि से मैं इसे अनावश्यक समझता हूं।

और फिर सभा को बता दूं कि ऐसा तय हो रहा है कि आगे चल कर मैं एक ऐसा संशोधन पेश करूंगा जिसके अनुसार राष्ट्रपति तीन व्यक्तियों को तो राज्य-परिषद् के लिये या लोक-सभा के लिये मनोनीत कर सके और मनोनीत व्यक्ति उस विषय के विशेषज्ञ हों जिसके सम्बन्ध में सरकार ने कोई बिल उपस्थित किया हो। अगर कोई व्यवसाय सम्बन्धी मसले के बारे में कोई बिल है तो कोई ऐसा व्यक्ति जिसे उसकी पूरी जानकारी हो प्रधान द्वारा राज्य-परिषद् के लिये या लोक-सभा के लिये मनोनीत कर लिया जायेगा। जब तक उस बिल का निपटारा न हो जाये उस समय तक के लिये वह विधान-मण्डल का सदस्य रहेगा और उसे सभा में बोलने का अधिकार होगा किन्तु मत देने का उसे

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

अधिकार न होगा। इस तरह के एक संशोधन द्वारा मसौदा समिति ऐसे विशेषज्ञों को सभा में लाना चाहती है जिनकी विधान-मण्डल को किसी समय जरूरत पड़ जाये। जैसा कि मैं कह चुका प्रो. शाह के संशोधन को नामंजूर करने का यही औचित्य है और इसी के आधार पर अन्य संशोधन भी, जिसमें कृषि, उद्योग धन्धा तथा अन्य हितों के प्रतिनिधान पर आग्रह किया गया है, अनावश्यक हैं। जब भी विशेषज्ञों का परामर्श आवश्यक होगा, हम जो संशोधन रखने वाले हैं, उससे हमारा यह प्रयोजन पूर्णत: सिद्ध हो जायेगा। माननीय सदस्यों को याद होगा कि सन् 1919 के एक्ट द्वारा जब प्रान्तों में द्वैध-शासन व्यवस्था चलायी गयी थी तो उसी आशय का एक प्रावधान उस एक्ट में भी रखा गया था जिसके आधार पर प्रान्तीय सरकारें किसी खास बिल के सम्बन्ध में परामर्श प्राप्त करने के लिये विशेषज्ञों को विधान-मण्डल में मनोनीतकरण द्वारा ले सकती थीं। मेरा ऐसा ख्याल है और मैं विश्वास करता हूं, श्रीमान्, कि जो संशोधन सभा के समक्ष मैं आगे चल कर रखने जा रहा हूं उससे हमारी आवश्यकता पूरी हो जायेगी।

***श्री आर.के सिधवा:** क्या मनोनयन सम्बन्धी खण्ड रह जायेगा?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** हां।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधन नं. 1379 पर मत लेता हूं। प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 का खण्ड (2) हटा दिया जाये।"

संशोधन नामंजूर रहा।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 का खण्ड (4) हटा दिया जाये।"

संशोधन नामंजूर रहा।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1369 में, अनुच्छेद 67 के लिये प्रस्तावित खण्ड (1) में 'दो' शब्द की जगह 'एक' शब्द रखा जाये।"

संशोधन नामंजूर रहा।

***उपाध्यक्ष** : अब प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1369 में, अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) को हटा दिया जाये।"

संशोधन अस्वीकृत रहा।

***उपाध्यक्ष** : प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1369 द्वारा प्रस्तावित अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में '12 सदस्य' शब्दों की जगह 'सभा की समस्त सदस्य संख्या के 6 प्रतिशत से अधिक नहीं' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार कर दिया गया

***उपाध्यक्ष** : अब मैं अल्पकालिक सूचना से प्राप्त, श्री हुकुमसिंह के संशोधन पर मत लेता हूं। प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1369 में, अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) में 'प्रावहित रीति से' शब्दों की जगह 'दिखाई गई श्रेणियों में से' शब्द रखे जायें।"

संशोधन नामंजूर रहा

***उपाध्यक्ष** : प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) की जगह निम्नलिखित अंश रखा जाये:

'(1) राज्य-परिषद् के दो सौ पचास से अधिक सदस्य न होंगे, जिनमें,

(क) बारह सदस्य प्रधान द्वारा इस अनुच्छेद के खण्ड (2) में प्रावहित रीति से मनोनीत होंगे, और

(ख) शेष राज्यों के प्रतिनिधि होंगे।' "

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्ष** : अब मैं, संशोधन नं. 1375 पर जो डॉ. अम्बेडकर के नाम है, राय लेता हूं। यह यों है:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) के परन्तुक को हटा दिया जाये।"

***श्री एल. कृष्णस्वामी भारती:** एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान्। संशोधन नं. 1375 कायदे के बाहर है क्योंकि हम संशोधन नं. 1369 को पास कर चुके हैं जिसके द्वारा खण्ड (1) की जगह एक दूसरा अंश हमने रख लिया है जिसमें यह परन्तुक नहीं है। अत: यह परन्तुक अब उस संशोधन के स्वीकृत हो जाने से, खण्ड (1) में रह ही नहीं जाता। अब इस खण्ड में उसका अस्तित्व ही नहीं है तो उसके हटाने का सवाल ही नहीं खड़ा हो सकता है।

***उपाध्यक्ष:** तब मैं इस संशोधन पर राय नहीं लूंगा।

***उपाध्यक्ष:** अब सवाल यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (1क) में, जिस रूप में कि वह अभी उपस्थित किया गया है, निम्नलिखित शब्द और जोड़ दिये जायें:

'किन्तु शर्त यह है कि, प्रथम अनुसूची के भाग 3 में उस समय उल्लिखित रहे राज्यों के प्रतिनिधियों की कुल संख्या और उन राज्यों की समस्त जनसंख्या के बीच जो अनुपात होगा वह उस अनुपात से ज्यादा न होगा जो उस अनुसूची के भाग 1 और 2 में उस समय उल्लिखित रहे राज्यों के प्रतिनिधियों की कुल संख्या तथा ऐसे राज्यों की समस्त जनसंख्या के बीच हो।' "

संशोधन अस्वीकार कर दिया गया।

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1378 में, अनुच्छेद 67 के लिये प्रस्तावित खण्ड (1क) की जगह निम्नलिखित अंश रखा जाये:-

'(1क) राज्यों के प्रतिनिधियों को राज्य-परिषद् में, निम्नलिखित सिद्धान्तों के आधार पर स्थान वितरित किये जायेंगे:

(क) प्रथम अनुसूची के प्रत्येक राज्य के लिये, प्रथम सत्तर लाख की आबादी तक प्रति दस लाख पर 1 प्रतिनिधि होगा किन्तु शर्त यह है कि किसी भी राज्य को, राज्य-परिषद् में एक से कम प्रतिनिधान न होगा।

(ख) प्रथम सत्तर लाख की आबादी के ऊपर प्रति बीस लाख पर 1 प्रतिनिधि होगा।' "

संशोधन अस्वीकार कर दिया गया।

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1378 में, अनुच्छेद 67 के लिये प्रस्तावित खण्ड (1क) में 'अनुसूची 3 (ख) में, इस बारे में दिये हुए बन्धानों के अनुसार होगा' शब्दों की जगह ये शब्द रखे जायें कि 'प्रत्येक अंगभूत राज्य को समान प्रतिनिधान के आधार पर स्थन दिये जायें और स्थानों की संख्या किसी भी देश में तीन से ज्यादा न होगी।' "

संशोधन नामंजूर रहा।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1378 में अनुच्छेद 67 के लिये प्रस्तावित खण्ड 1 (क) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड (1ख) जोड़ दिया जाये:

'(1ख) इस बात के लिये कार्रवाई की जायेगी कि जहां तक सम्भव हो, विभिन्न इकाइयों के लोगों को प्रतिनिधित्व प्राप्त रहे।' "

संशोधन अस्वीकार कर दिया गया।

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (क) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड जोड़ दिया जाये:

'राज्य-परिषद् के स्थानों का राज्यों के प्रतिनिधियों में बंटवारा, अनुसूची 3(ख) में इस बारे में दिये हुए बन्धानों के अनुसार होगा।' "

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (1) की परन्तुक हटा दी जाये और खण्ड (1) के बाद निम्नलिखित नया खण्ड जोड़ दिया जाये:

'(1क) संसद् विधि द्वारा एक परामर्शदातृ-परिषद् स्थापित कर सकती

[उपाध्यक्ष]

है जिसमें कृषि के (25), उद्योग धन्धे के (15), व्यापार के (10), माइनिंग, फारेस्ट्री और इंजीनियरिंग के (10), सार्वजनिक उपयोगिताओं के (5), सार्वजनिक-सेवाओं के (5), तथा अर्थ-शास्त्रज्ञों के (5) प्रतिनिधि होंगे और वह परिषद्, संसद् तथा मन्त्रिमण्डल को नीति विषयक प्रश्नों पर जिनका कि कृषि, उद्योग धन्धा, व्यापार, माइनिंग, फारेस्ट्री और इंजीनियरिंग, सार्वजनिक उपयोगिता तथा सार्वजनिक-सेवाओं पर प्रभाव पड़ता हो, परामर्श देगी; और इनमें से किसी भी विषय के बारे में कानून बनाने के लिये प्रस्ताव तैयार करेगी या तद्विषयक प्रस्तावों की छानबीन करेगी।

व्याख्या.—हर वर्ग के आगे कोष्ठक में जो संख्या दी हुई है वह हर वर्ग के प्रतिनिधियों की कुल संख्या है।

इस परिषद के सदस्यों के, व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से, प्रशासन सम्बन्धी या कार्यपालक प्रकार्य, कर्त्तव्य अथवा दायित्व न होंगे। परिषद् के प्रत्येक सदस्य को ऐसे वेतन, परिलाभ, या भत्ते दिये जायेंगे जिनका संसद् समय-समय पर प्रावधान करे।' "

संशोधन अस्वीकार कर दिया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1380 में, अनुच्छेद 67 के लिये प्रस्तावित खण्ड (2) में 'विशेष ज्ञान अथवा व्यावहारिक अनुभव' शब्दों की जगह 'वास्तविक ज्ञान या उनके प्रति सक्रिय निष्ठा' शब्द तथा 'साहित्य, कला, विज्ञान और सामाजिक सेवायें' शब्दों की जगह 'प्राचीन भारतीय दर्शन और संस्कृति का इतिहास, कला, विज्ञान तथा ऐसी सामाजिक सेवायें जो अन्तर्मुखी भारत के पुनर्निर्माण के हेतु' शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकृत रहा।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1380 में, अनुच्छेद 67 के लिये प्रस्तावित खण्ड (2) के अन्त में 'विज्ञान' शब्द के बाद 'दर्शन, धर्म एवं कानून' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन नामंजूर रहा।

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"संशोधन-सूची के संशोधन नं. 1380 में, अनुच्छेद 67 के लिये प्रस्तावित खण्ड (2) के अन्त में 'साहित्य...' इत्यादि से आरम्भ होने वाले शब्दों को, उस खण्ड के उपखण्ड (क) के रूप में रखा, जाये और उसके बाद निम्नलिखित नया उपखण्ड जोड़ दिया जाये:

'(ख) पत्रकारिता, वाणिज्य, उद्योग धन्धा तथा कानून'"

संशोधन नामंजूर हो गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (2) के स्थान पर निम्नलिखित अंश रखा जाये:

'(2) इस अनुच्छेद के खण्ड (1) के उपखण्ड (क) के अधीन राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जाने वाले सदस्यों में ऐसे व्यक्ति होंगे जिनको इन विषयों का जिनका उल्लेख नीचे है, विशेष ज्ञान अथवा व्यावहारिक अनुभव होगा:

साहित्य, कला, विज्ञान और सामाजिक सेवायें।' "

संशोधन स्वीकार हुआ।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) की जगह निम्नलिखित अंश रखा जाये:

'राज्य-परिषद् के सभी सदस्य निर्वाचित होकर आयेंगे और प्रत्येक संविधायी राज्य वयस्क मताधिकार के आधार पर पांच सदस्य चुनेगा।' "

संशोधन अस्वीकार कर दिया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) में जहां भी दूसरी बार 'elected' शब्द आया है वह हटा दिया जाये।"

संशोधन नामंजूर रहा।

***उपाध्यक्ष:** अब प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (ख) में जहां भी दूसरी बार 'elected' शब्द आया है हटा दिया जाये।"

संशोधन नामंजूर रहा।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) में, 'लेजिस्लेटिव असेम्बली' (Legislative Assembly) शब्दों की जगह 'अवरागार' (Lower House) शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार कर दिया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) में 'लोअर हाउस' (Lower House) शब्दों की जगह 'दोनों आगारों के' (the two Houses) शब्द रखे जायें।"

संशोधन अस्वीकार कर दिया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) में निम्नलिखित नया उपखण्ड (घ) जोड़ा जाये:

'(घ) उपखण्ड (क) तथा (ख) के अधीन होने वाला चुनाव अनुपाती प्रतिनिधान की पद्धति के आधार पर एकल संक्राम्य मत द्वारा किया जायेगा।' "

संशोधन अस्वीकार कर दिया गया।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) के अन्त में निम्नलिखित शब्द जोड़ दिये जायें:

'अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के अनुसार एकल संक्राम्य मत द्वारा,।' "

संशोधन स्वीकृत हुआ।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (ख) में 'उस आगार के निर्वाचित सदस्यों द्वारा' शब्दों के बाद 'अनुपाती प्रतिनिधान पद्धति के अनुसार एकल संक्राम्य मत द्वारा' शब्द जोड़ दिये जायें।"

संशोधन मंजूर हुआ।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (क) के अन्त में 'और' (and) शब्द जोड़ दिया जाये और उपखण्ड (ख) के अन्त में 'तथा' (and) शब्द को हटा दिया जाये।"

संशोधन नामंजूर रहा।

***उपाध्यक्ष:** प्रस्ताव यह है कि:

"अनुच्छेद 67 के खण्ड (3) के उपखण्ड (ग) को हटा दिया जाये।"

संशोधन नामंजूर रहा।

***उपाध्यक्ष:** तो कुल मिला कर पांच संशोधन ऐसे हैं जो यहां स्वीकार कर लिये गये हैं और वह हैं नं. 1369, 1378, 1380, 1400 और 1403 ।

अब मैं इस स्थिति में हूं कि सभा को यह सूचना दे दूं कि इस महीने की 8वीं तारीख को निश्चित रूप से यह अधिवेशन स्थगित कर देंगे। किन्तु 8 तारीख शनिवार को बैठक होगी। अब सभा कल प्रात: 10 बजे तक के लिये स्थगित होती है।

तदुपरान्त सभा मंगलवार, 4 जनवरी, सन् 1949 ई. के प्रात: 10 बजे तक के लिये स्थगित हुई।